जैन भारती

वर्ष 53 • अंक 3 • मार्च, 2005

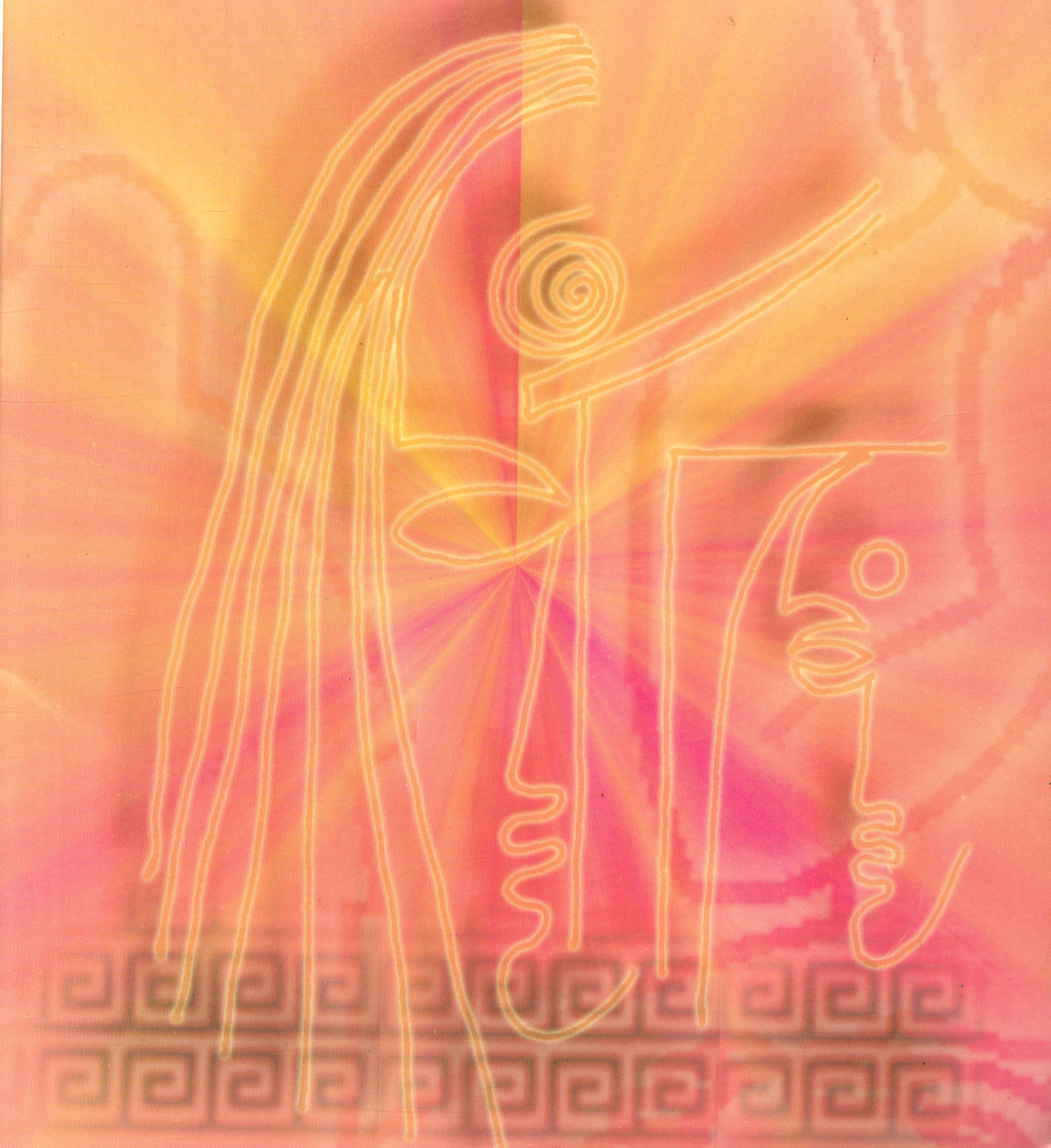

With Best Compliments From :

GIRIAS

The Consumer Durable People

The Undisputed No. 1 in Karnataka for Television and Home Appliances

BANGALORE 4 world class Showrooms

Gandhinagar ☆ **Brigade Road** ☆ **Sadashivnagar** ☆ **Jayanagar**

Gandhinagar	Brigade Road	Sadashivnagar	Jayanagar
Ph : 2264551	Ph : 2228032	Ph : 3619195	Ph : 6566140
2204189	2270126	3619196	6566141
Fax : 2262123	Fax : 2235555	Fax : 3611448	Fax : 6566142

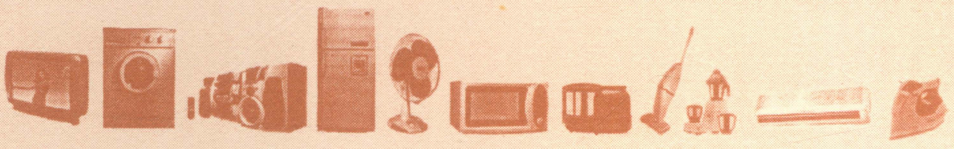

COIMBATORE 2 world class Showrooms

Dr. Nanjappa Road
Ph : 233059
Fax : 231675

Cross Cut Road
Ph : 236486
Fax : 236487

MANGALORE
NALPAD APSARA CHAMBERS
K. S. Rao Road, Hampan Katta
Tel. : 2442220, 2442880

TIGER 388292

KARNATAKA FILATEX

(Mfrs. of H.D.P.E Woven Fabric)
Magadi Chord Road, BANGALORE 560079
Ph. 23353714

GIRIAS UTTARANCHAL TEA

UTTARANCHAL TEA CO. PVT. LTD.

Pingalkot, Post. Kausani
Dist. Bageshwar, Uttaranchal
Ph. : 059 62 45330 / 331 Fax : 45314

SONY BPL SAMSUNG ELECTRONICS LG IFB SHARP Electrolux Kelvinator VIDEOCON Whirlpool ONIDA PHILIPS

Godrej THOMSON SANSUI AIWA USHA LEXUS FORBES GLEN APPLIANCES BRAUN MAHARAJA Kailash ULTRA GRIND

शुभू पटवा
मानद संपादक
•
बच्छराज दूगड़
मानद सह-संपादक

जैन भारती

वर्ष 53 • मार्च, 2005 • अंक 3

विमर्श

9
आचार्यश्री महाप्रज्ञ
साक्षात्कार परम सत्य का

14
डॉ. पुष्पलता जैन
जैन संस्कृति और नारी

19
डॉ. साध्वी गवेषणा
कर्म और बंध : एक विवेचन

•
आवरण
अडिग

अनुभूति

25
प्रो. कल्याणमल लोढ़ा
प्रेम की सर्वात्म अनुभूति : अध्यात्म की जागृति

27
मुनि मदनकुमार
जैन वाङ्मय में होली पर्व : एक वृत्तांत

33
साध्वी शुभप्रभा
नारी : अनुभूतिमय अनमोल रचना

37
कहानी
हृदयेश
खेल

42
कविता
गिरिजाकुमार माथुर की कविताएं

प्रसंग

5
शुभू पटवा
संस्कृति और नारी

शीलन

45
समणी अमितप्रज्ञा
कर्मयोग : मेरे हाथ जगन्नाथ

48
साध्वी कांतयशा
इन हाथों से ऐसा अकृत्य

51
इला र. भट्ट
शिक्षा जगत और स्त्री का स्वरूप

54
बालकथा
हरदर्शन सहगल
अंकित की खुशी

संपादकीय पता : संपादक, जैन भारती, भीनासर 334403, बीकानेर • फोन : 2270305, 2202505
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- रुपये • त्रैवार्षिक 500/- रुपये • दसवर्षीय 1500/- रुपये

तुम्हारी स्वीकृति की जरूरत नहीं

खेरवावासी भगजी दीक्षा के लिए तैयार हुए। तब उनके चचेरे भाइयों ने बहुत विग्रह खड़ा कर दिया। वे ऐसा कहने लगे, 'इस दीक्षा में हमारी स्वीकृति नहीं है।'

तब स्वामीजी ने कहा—'तुम्हारी स्वीकृति की जरूरत भी नहीं है।'

फिर भगजी ने बड़ी बहिन की स्वीकृति लेकर दीक्षा ग्रहण की। इस पर उन चचेरे भाइयों ने बहुत विग्रह खड़ा कर दिया। स्वामीजी के सम्मुख बहुत दिनों तक वे झगड़ा करते रहे, पर स्वामीजी ने उसकी कोई परवाह नहीं की।

एक दिन स्वामीजी ने भगजी से पूछा—'तुझे वे जबरदस्ती वापस घर में ले जाएं तो तू क्या करेगा?'

तब भगजी बोले—'यदि वे मुझे घर में ले जाएं तो मुझे चारों आहार करने का त्याग है।'

सं. 1860 का चतुर्मास स्वामीजी ने सिरियारी में किया। उस चतुर्मास में भगजी के चचेरे भाइयों ने फिर बहुत विग्रह खड़ा किया। पर स्वामीजी न्याय-मार्ग पर थे, इसलिए उन्होंने किसी की परवाह नहीं की।

शंका का समाधान

टीकम डोसी अनेक विषयों में संदिग्ध हो गया। वह लगभग उनतीस पन्ने लिख कर लाया। वह चर्चा करने लगा। बहुत बोलता था। तब स्वामीजी ने उसके पन्ने पढ़ा, उत्तर लिख दिए और वे उसे पढ़ा दिए। लगभग 26 पन्नों में जो जिज्ञासाएं लिखी हुई थीं, उनका तो समाधान कर दिया। तब उसकी आंखों में आंसू की धार बहने लगी। वह गद्गद स्वर में बोला—'स्वामीजी! यदि आप नहीं होते, तो मेरी क्या गति होती? आप तीर्थंकर, केवली समान हैं।' उसने इस प्रकार बहुत गुणानुवाद किया। स्वामीजी की रचनाओं को सुन वह बहुत प्रसन्न हुआ। वह बोला—'ये रचनाएं क्या हैं! ये तो सूत्रों की निर्युक्तियां हैं।' वह लंबे समय तक उपासना कर वापस अपने प्रदेश कच्छ चला गया।

कच्छ में जाने के बाद फिर उसके मन में संदेह के बादल उमड़ आए। तब उसने आजीवन चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान कर अनशन कर दिया। उसने कहा—'अब मेरे संदेहों का समाधान सीमंधर स्वामी करेंगे।' पंद्रह दिन के अनशन के पश्चात् उसका देहावसान हो गया। •

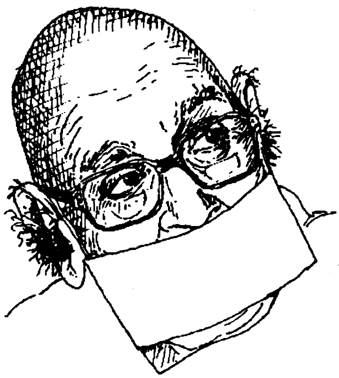

आत्मा पर मूर्च्छा का आवरण होता है तब अहंकार और ममकार जागता है। मूर्च्छा का आवरण हटने के बाद अमुक काम करने वाला मैं हूं, अमुक वस्तु मेरी है—इस प्रकार का भाव चेतना का स्वभाव नहीं बनता। क्योंकि उपाधि का मूल कारण मूर्च्छा है। कारण के अभाव में कार्य नहीं होता। उपाधि के अभाव में 'मैं' और 'मेरे-पन' का भाव पैदा नहीं होता। 'अयमात्मा'—यह आत्मा है, इस वाक्य में केवल अस्तित्व का बोध होता है। इसके साथ मूर्च्छा का योग होते ही 'अहमात्मा'—मैं आत्मा हूं, यह अहंकार जन्म ले लेता है।

जहां ममता है, मूर्च्छा है, उसकी परिणति विपरीत दृष्टिकोण में होती है। विपरीत दृष्टिकोण का नाम मिथ्यात्व है। उसका हेतु है ममता। जहां समता की अनुभूति होती है, वहां दृष्टिकोण सम्यक् बनता है। आत्मा का विकास उसी स्थिति में संभव है।

—आचार्य तुलसी

अहिंसा के विकास का आधार है—नैतिकता। नैतिकता नहीं है तो अहिंसा का विकास नहीं हो सकता, और अहिंसा का विकास नहीं है तो व्यवहार में नैतिकता का आचरण भी बहुत कठिन है। अहिंसा और नैतिकता—दोनों के युगपत् विकास से ही स्वस्थ समाज की रचना हो सकती है।

स्वस्थ समाज वह होता है, जहां अहिंसा और नैतिकता की प्रतिष्ठा होती है।

अहिंसक वह होता है, जिसके मुख पर सहज प्रसन्नता और हृदय में करुणा होती है।

अशांति का प्रमुख कारण है—असंतुलन। जिस व्यक्ति का जीवन संतुलित होता है, उसे शांति का स्वर्णसूत्र उपलब्ध हो सकता है।

—युवाचार्यश्री महाश्रमण

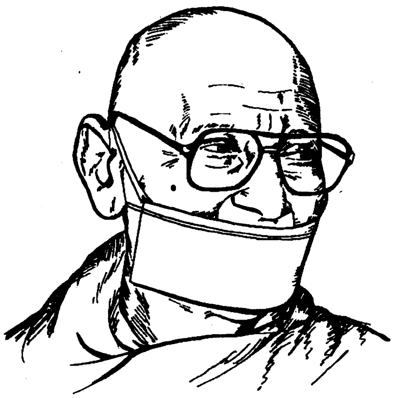

अध्यात्म की साधना एक निरालंब मार्ग है। अध्यात्म स्वयं निरालंब है। वहां किसी आलंबन या सहारे की जरूरत नहीं है। अध्यात्म में किसी आलंबन की अपेक्षा नहीं है, किंतु अध्यात्म में पहुंचने के लिए आलंबन आवश्यक है, सहारा खोजना होता है। अध्यात्म की यात्रा करने वालों ने, मन पर अनुशासन करने वालों ने आलंबनों को खोजा है। अध्यात्म-साधकों ने नाना आलंबनों की शरण ली है। आलंबनों के बिना वहां नहीं पहुंचा जा सकता। बहुत जरूरी है आलंबन। इसीलिए छोटे-बड़े सभी आलंबनों की श्रृंखला बनाई गई। जयाचार्य ने आलंबनों की एक पूरी सूची प्रस्तुत की है। निरालंब तक पहुंचने में जिन आलंबनों की अपेक्षा है—उनमें संयम, तप, जप, शील, स्वाध्याय, अनित्य-अनुप्रेक्षा, अशरण-अनुप्रेक्षा, अनंत-अनुप्रेक्षा और निर्मल-ध्यान—ये मुख्य हैं। इन आलंबनों का उपयोग किए बिना कोई भी साधक निरालंब तक नहीं पहुंच सकता। अशुद्ध आलंबनों को छोड़कर शुद्ध आलंबनों को स्वीकार करना—यह प्रथम नियम है। वासना अशुद्ध आलंबन है। चेतना शुद्ध आलंबन है।

अशुद्ध आलंबनों को छोड़ना और शुद्ध आलंबनों का सहारा लेना—यह ध्यान की प्रक्रिया का मूल है। इसका तात्पर्य है कि कामकेंद्र की ओर प्रवाहित होने वाली चेतना को ऊपर उठाकर ज्ञानकेंद्र में ले जाना। नीचे के प्रवाह को बदलकर उसको ऊपर की ओर मोड़ देना। यह शुद्ध आलंबन की स्वीकृति है। यह प्रयत्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रयत्न है। इस प्रयत्न से सारी वृत्तियों का परिष्कार होता है।

—आचार्यश्री महाप्रज्ञ

प्रसंग

संस्कृति और नारी

आठ मार्च का दिन पूरी दुनिया में महिलाओं के लिए निर्धारित है। अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के इस रोज महिलाओं के प्रसंग पर सदा ही अलग-अलग तरह से विमर्श होता है। बहुत क्षेत्रों में उनके सबलीकरण पर सबसे अधिक चिंता की जाती है। इसे संयोग ही कहा जाना चाहिए कि प्राचीनकाल से लेकर अब तक सामाजिक, धार्मिक-आध्यात्मिक क्षेत्र में महिलाओं के लिए पुरुष वर्ग ने जितना किया, शायद स्वयं स्त्री वर्ग ने न किया हो। महावीर और बुद्ध से लेकर गांधी और आचार्य तुलसी तक ऐसे कई नाम गिनाए जा सकते हैं। महावीर ने अपने श्रमण संघ में चंदना को प्रमुख बनाया तो आचार्य तुलसी ने उसी धारा पर अग्रसर होते हुए नारी समाज को न केवल ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए आधुनिक शिक्षा-दीक्षा की ओर उन्मुख किया, घर-गृहस्थी में रहते हुए सामाजिक क्षेत्र में अपनी क्षमता और प्रतिभा को खपाने के लिए भी स्त्री वर्ग को अभिप्रेरित किया। एक धर्म-संप्रदाय की सीमाओं में रहते हुए आचार्य तुलसी को यह सब करने में अपने ही लोगों का प्रतिकार भी सहना पड़ा, पर अपनी प्रबल आत्मशक्ति और दृढ़ता के बूते उन्होंने ऐसे प्रतिकारों का रचनात्मक-सकारात्मक उत्तर दिया। आज यह कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी के तेरापंथ संघ में नारी समाज की रचनात्मक-सकारात्मक भूमिका केवल अपने ही संगठन तक न रहकर गुजरात के भूकंप से लेकर अंडमान-निकोबार द्वीप के समुद्री लहरों के कहर तक में देखी जा सकती है। अतः आठ मार्च को विश्व स्तर पर स्त्री वर्ग के लिए जब कोई चर्चा होगी तो ऐसे समूहों के योगदान भी प्रकारांतर से इन चर्चाओं को मजबूती देने वाले सिद्ध होंगे।

नारी के भिन्न-भिन्न रूपों और उत्तरदायित्वों से हमारा वाङ्मय भरा पड़ा है। दुनिया-भर के विचारकों-दार्शनिकों ने नारी के नकारात्मक और सकारात्मक स्वरूपों पर अलग-अलग तरह के मत प्रकट किए हैं और उन सभी को एक साथ सामने रखकर किसी निष्कर्ष पर पहुंचना सामान्य जन के लिए तो कठिन है ही, किसी विचारशील व्यक्ति के लिए भी दुविधाकारी है। लेकिन इस तरह के मत-मतांतरों का यह निष्कर्ष तो निर्विवाद है ही कि कोई भी संस्कृति नारी के अभाव में जड़ है, विद्रूप है, निरर्थक है। दुनिया-भर की संस्कृतियों को देखा जा सकता है—हम यह पाएंगे कि स्त्री जाति की भूमिका समाज के निर्माण से लेकर उसको परिपुष्ट बनाने में निर्विवाद रही है। किसी भी संस्कृति का सबसे सुदृढ़ आधार समाज होता है और नर-नारी से विहीन समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

संस्कृति क्या है? किसी बड़े विचारक ने माना कि 'संसार-भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गईं, उनसे अपने-आपको परिचित कराना संस्कृति है।' एक परिभाषा यह भी दी गई—'संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, सुदृढ़ीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न

अवस्था है।' इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि हमारे मन, हमारे आचार-व्यवहार और हमारी रुचियों को परिष्कृत करने की क्षमता भी संस्कृति में ही अंतर्निहित है। दरअस्ल संस्कृति मनुष्य को सभ्य और स्वतंत्र बनाने में एक महत्त्वपूर्ण सहायक की तरह निरंतर गतिशील रहने वाली क्रिया है और हम देखते हैं कि इसका अनवरत सक्रिय रहना ही सभ्य समाज को परिपुष्ट बनाना है। नारी ऐसे परिपुष्ट समाज के केंद्र में है।

जब सभ्यता और संस्कृति की बात होती है तो अक्सर पुरुष-प्रधान समाज-व्यवस्था तक ही हमारी दृष्टि सीमित हो जाती है। डॉ. राधाकृष्णन जैसे विचारक-दार्शनिक मानते हैं कि—'नारी के विशेष गुण हैं—दया और कोमलता, शांति और प्रेम, समर्पण और बलिदान। पुरुष का प्रभुत्व स्वाभाविक नहीं है। ऐसे अनेक युग और समाज के रूप रहे हैं, जिनमें पुरुष का प्रभुत्व इतना सुनिश्चित नहीं था जितना हम अज्ञानवश मान लेते हैं।' इसी बात को आगे बढ़ाते हुए डॉ. राधाकृष्णन लड़के-लड़की के प्रति एक-समान ब्यवहार की बात को भी स्थापित करते हैं। सह-शिक्षा को यह कहते हुए वे स्थापित करते हैं—'भारत के वन-विश्वविद्यालयों (आश्रमों) में लड़के-लड़कियों को साथ-साथ शिक्षा दी जाती थी।' वराहमिहिर जैसे ऋषि का कथन है कि धर्म और अर्थ की सिद्धि स्त्रियों पर ही निर्भर है और मानवीय प्रगति के लिए वे अत्यंत आवश्यक हैं। यही नहीं, ऋग्वेद में यह तक कहा गया है कि युवती कन्याएं स्वच्छंद जीवन बिताती थीं और पति के चुनाव में उनकी राय निर्णायक होती थी। भारतीय संस्कृति में सभी 'आश्रम' गृहस्थ पर निर्भर रहे हैं। सुशिक्षित कन्या परिवार के लिए गौरव की बात मानी जाती थी।

ठीक इसी तरह आध्यात्मिक उन्नति के क्षेत्र में भी नारी को समान अधिकार देने की बात कही गई है। यद्यपि अनेक धर्म-संस्कृतियों में इस पर अलग-अलग मत रहे हैं, पर यह मत भी रहा है कि परंपरागत नैतिकता संदिग्ध हो सकती है, जबकि वैयक्तिक नैतिकता पर सवाल उठाना कठिन रहा है। हमारी संस्कृति में यह बात सर्वमान्य रही है कि जीवन के क्षेत्र में जो विभिन्न तरह के कर्तव्य हमारे सामने आते हैं, उनका सम्यक् रूप से निर्वाह करते रहने और उनको संपन्न करते हुए हम मुक्ति की खोज भी कर सकते हैं। इसी को जीवन-सत्य माना गया है। यह मत कोई कमतर आधार नहीं रखता कि आत्मा की मुक्ति इच्छाओं को बलपूर्वक दबा देने से नहीं, अपितु समुचित संगठन करने से हो सकती है। यह हमारी ही संस्कृति है, जहां जीवन-साधना और धर्म-साधना में कोई विरोधाभास नहीं देखा गया, अपितु उसके पृथक् रूप अवश्य रहे और अपने-अपने स्तर पर उन सभी को समान रूप से आदर मिलता रहा।

महात्मा गांधी ने समाजसेवा और उच्च नैतिक आदर्शों को धर्म ही माना और मनुष्य के दैनंदिन के, क्षण-क्षण के कर्म को धर्म-स्वरूप समझा। डॉ. राधाकृष्णन तो यह तक कहते हैं कि माता-पिता के लिए संतान का होना आध्यात्मिक अवलंबन है। लेकिन महात्मा गांधी इसके विपरीत बाल-बच्चे उत्पन्न करना ऊंचा ध्येय नहीं मानते। वे नर और नारी के संबंधों को स्वाभाविकता प्रदान करने की वकालत करते हुए कहते हैं कि केवल रूप और सौंदर्य तथा आधिभौतिक सुखों के लोभ में यदि नर-नारी एक-दूसरे से मिलते हैं, तो यह ऊंचा मिलन नहीं है। गांधीजी कहते हैं कि व्याकुलता तो दोनों में आत्म-विकास के लिए होनी चाहिए, जिसका साधन समाजसेवा और स्वार्थ-त्याग है। गांधीजी यहां आकर विवाह की बात भी कह देते हैं, पर साथ ही यह भी कह देते हैं कि ऐसे विवाह में दोनों का आनंद बौद्धिक-मिलन अथवा आध्यात्मिक समीपता के आनंद के रूप में होना चाहिए।

विचारों और अनुभूतियों की समानता, बौद्धिक और सुरुचिपूर्ण साहचर्य यदि जीवन-मूल्यों और आत्म-अनुसंधान में सहायक हो सकता है तो अंततः आत्मविकास का मार्ग भी प्रशस्त हो सकता है। तभी तो गृहस्थ जीवन भी आश्रम-जीवन माना गया और आध्यात्मिक उत्कर्ष की प्रबल संभावना बने रहना भी स्वीकार किया गया।

आठ मार्च; अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस पर जहां नारी-अधिकारों, उसके सबलीकरण और समानता की बात की जाती है, तो भारतीय संदर्भों का स्मरण करते हुए अपनी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में इस दृष्टि से भी विचार होना चाहिए कि भारतीय समाज में नारी का स्थान जिस रूप में रहा है उसे पुनर्स्थापित करने की दिशा में दृढ़ता के साथ क्या कदम उठाए जाएं कि सामाजिक-आध्यात्मिक स्तर पर एक ऐसे समाज को गढ़ा जा सके जिसमें नर-नारी के मध्य समरसता और समस्वरता प्रस्फुट हो सके।

—शुभू पटवा

विमर्श

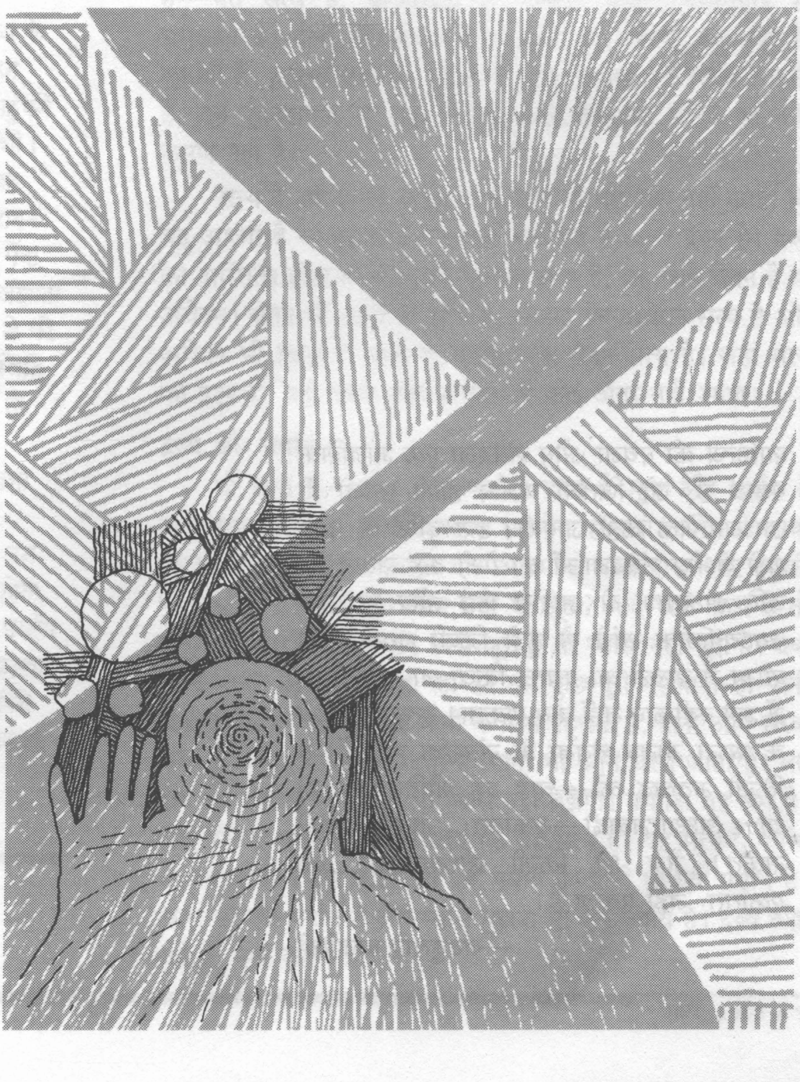

साहित्य की रचना और संवेदना एक मानसिक पदार्थ है, जो जितनी गंभीर होगी उतनी ही आध्यात्मिक कही जाएगी। इस दृष्टि से आप मुझे गंभीर संवेदनाओं का प्रेमी कह सकते हैं। यदि अध्यात्म से आशय कुछ और हो और आध्यात्मिक सांचे से मुझे किसी मतवाद की सीमा में रखने का प्रयत्न किया जा रहा हो तो मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता। उत्कृष्ट काव्य के स्रष्टा मानव चेतना के संवर्द्धक होते हैं। वे किसी मतवाद को—चाहे वह भौतिकवादी हो या अध्यात्मवादी—एकांततः पकड़ नहीं सकते। मैंने भी किसी अध्यात्मवाद को एकांततः नहीं पकड़ा है।

—नंददुलारे वाजपेयी

साक्षात्कार परम सत्य का

आचार्यश्री महाप्रज्ञ

यह दृष्टि साफ रहनी चाहिए कि सत्य के साथ अनेक अपेक्षाएं जुड़ी हुई हैं। हम एकांत दृष्टि से न देखें। सत्य तक पहुंचने में शब्द व्यवधान भी है और साधन भी। शब्द यदि ज्ञान के साथ जुड़ा है तो वह सत्य की ओर ले जाएगा। यदि वह राग-द्वेष से जुड़ा है तो सत्य में व्यवधान पैदा करेगा। शब्द उलझाता भी है और सुलझाता भी है। यदि हम शब्द से परे, विचार से परे पहुंच जाएं, निर्विकल्प या निर्विचार स्थिति को प्राप्त कर लें तो उलझन समाप्त हो जाएगी। प्रेक्षाध्यान का एक प्रयोग है—विचार-प्रेक्षा। हम विचार को देखना शुरू करें, विचार बंद हो जाएगा और निर्विचार अवस्था घटित होने लगेगी। उस स्थिति में ज्ञाता-द्रष्टा-भाव विकसित होगा, अध्यात्म और सत्य का स्पर्श होगा, पर्याय के जगत् से द्रव्य के जगत् की ओर प्रस्थान होगा। यही प्रस्थान आध्यात्मिक व्यक्ति को परम सत्य का साक्षात्कार करा सकता है।

अध्यात्म का सूत्र है—'अप्पणा सच्चमेसेज्जा'—स्वयं सत्य की खोज करो। सत्य क्या है? क्या अध्यात्म ही सत्य है? क्या पुद्गल सत्य नहीं है? अध्यात्मवादी कहते हैं—आत्मा सत्य है। जो भौतिकवाद है, वह असत्य है। भौतिकवादी कहते हैं—भूत सत्य है, वास्तविक है। आत्मा केवल मायाजाल है, भ्रमजाल है। दोनों अवधारणाएं एक-दूसरे को असत्य बता रही हैं, एकांगी हैं। आत्मा सत्य है, अध्यात्म सत्य है, जब यह स्वीकार करते हैं, तब पुद्गलवाद या भूतवाद सत्य नहीं है—यह मानने का कोई कारण नहीं है।

सत्य है अस्तित्व। अस्तित्व के स्तर पर यह प्रश्न नहीं उठता कि वह आत्मा है या पुद्गल। अस्तित्व अस्तित्व है, द्रव्य द्रव्य है। द्रव्य का अस्तित्व होता है। जो सत्ता है, वह सत्य है, वह चाहे चेतन है या अचेतन। चेतन भी उतना ही सत्य है, जितना कि अचेतन सत्य है और अचेतन भी उतना ही सत्य है, जितना कि चेतन सत्य है। जहां सत्य का प्रश्न है, वहां चेतन और अचेतन में कोई अंतर नहीं आता।

द्रव्य और पर्याय

दो सत्य हैं—द्रव्य और पर्याय। द्रव्य है मूल और पर्याय है नाना-रूप। इन नाना-रूपों के कारण भ्रम पैदा हो गया। समझ में आया कि इसका कारण है—पर्याय। एक आदमी ने पानी पीया और उसकी प्यास बुझ गई। पानी को सत्य मानें या झूठ? यदि पानी सत्य है तो पानी से प्यास बुझेगी। यदि पानी झूठ है तो प्यास नहीं बुझेगी। एक हिरण कच्छ के रण में दौड़ रहा है। उसे कुछ दूरी पर पानी-ही-पानी दिखाई देता है। जैसे ही वह पानी के पास पहुंचता है, पानी आगे सरक जाता है। वह और आगे बढ़ता है, पानी भी आगे चला जाता है। वह दिन-भर चक्कर लगाए तो भी प्यास नहीं बुझेगी। क्योंकि वह भ्रम है। पानी पीने से प्यास बुझी, इसलिए कि वह सत्य है। यह सत्य है पर्याय का सत्य। पानी पीने वाला भी एक पर्याय है। पानी भी एक पर्याय है। प्यास भी एक पर्याय है और प्यास बुझना भी एक पर्याय है। द्रव्य कोई नहीं है, मूल कोई नहीं है।

पर्याय है मनुष्य

मूल द्रव्य बहुत सूक्ष्म हैं। वे इतने सूक्ष्म हैं कि हमारी पकड़ से बाहर हैं। हम मूल सत्य तक तभी पहुंच सकते हैं, जब हमारा ध्यान चरम शिखर तक पहुंच जाता है। शुक्ल-ध्यान की स्थिति आ जाए तो हम मूल-द्रव्य को छू सकते हैं। जब तक शुक्ल-ध्यान का विषय नहीं आता और मात्र धर्मध्यान का विषय रहता है, तब तक मूल-द्रव्य का स्पर्श संभव नहीं है। धर्मध्यान का विषय है—पर्याय। हम पर्याय का ही ध्यान करते हैं और पर्याय को ही जानते हैं। जो जानता है, वह मनुष्य स्वयं पर्याय है। जिसको जानता है, वह भी पर्याय है। ज्ञाता भी पर्याय है और ज्ञेय भी पर्याय। एक मकान भी पर्याय है और उसे देखने वाला भी पर्याय। एक व्यक्ति कान से शब्द सुनता है। शब्द क्या है? वह पुद्गल का एक पर्याय है। वह आंख से रूप देखता है। रूप भी एक पर्याय है। संत-साहित्य में बार-बार गाया गया—झूठी जग की माया रे। यह जग की माया झूठी है। झूठी क्या है? पर्याय अल्पकालिक होता है, दीर्घकालिक नहीं होता। पर्याय स्थाई नहीं होता, इसलिए उसे झूठा कह दिया गया। वस्तुतः झूठा कुछ है नहीं। एक आदमी बहुत वर्ष जीवित रहा और एक दिन मर गया। जब वह जीवित था, तब असत्य कुछ नहीं था। जब वह मरा तब जग की झूठी माया कह दिया। वह कहां चला गया? पर्याय था, पर्याय में विलीन हो गया। मनुष्य होना झूठ नहीं है, जन्म और मृत्यु भी मिथ्या नहीं है। मनुष्य भी एक पर्याय है, जन्म और मृत्यु भी पर्याय हैं।

हमारे सामने जो है, वह पर्याय है। यह सारा खेल पर्याय का खेल है। मूल तक हमारी पहुंच ही नहीं हुई है। जो मूल द्रव्य है, वह शाश्वत है। जो पर्याय है, वह सामयिक है। शाश्वत या ध्रुव सत्य कभी नष्ट नहीं होता। सामयिक सत्य दीर्घकालिक भी होता है, किंतु उसकी निश्चित अवधि होती है। जो निरावधिक सत्य है, वह द्रव्य है। जो सावधिक सत्य है, वह पर्याय है। वह अवधि चाहे कितनी भी लंबी क्यों न हो, अंततः उसकी एक निश्चित सीमा है। देव और नरक की आयु बहुत लंबी मानी गई, पर उसकी एक निश्चित अवधि तो है ही। प्रत्येक स्थिति अवधि-सापेक्ष है। जिसकी अवधि है, उसे मिथ्या, माया और झूठा कह दिया गया। वस्तुतः वह मिथ्या नहीं है और इसलिए नहीं है कि वह भी अपना काम कर रहा है। मनुष्य अपना काम कर रहा है, जन्म अपना काम कर रहा है। रोटी एक पर्याय है। वह अपना काम करती है। भूख लगी, रोटी खाई और भूख बुझ गई। यदि रोटी झूठ और मिथ्या हो तो भूख नहीं बुझेगी। व्यक्ति ने सपने में रोटी खाई, पर भूख नहीं बुझी, क्योंकि वह सपना मिथ्या है। रोटी यथार्थ है, क्योंकि उसमें भूख बुझाने की क्षमता है। सारे जगत् को स्वप्नतुल्य कहा गया है। जगत् की सारी माया सपने जैसी है। इस संदर्भ में यह अंतर करना होगा—स्वप्न का सत्य अलग होता है, वस्तु का सत्य अलग होता है, पर्याय का सत्य अलग होता है। स्वप्न को भी सर्वथा मिथ्या नहीं कहा जा सकता। वह भी एक पर्याय है और स्वप्न-काल में तो वह यथार्थ ही प्रतीत होता है।

सपने की माया

भिखारी ने सपना देखा कि मुझे राज्य मिला है। मैं राजमहल में सो रहा हूं। महारानियां मेरी पगचंपी कर रही हैं। उसे इतने आनंद का अनुभव हुआ कि मानो सब-कुछ मिल गया हो। उसी समय कुत्ता आया। कुत्ते को भगाने के लिए लात मारी। वहां खप्पर पड़ा था। खप्पर टूट गया और सपना भी टूट गया। न राजा, न राजप्रासाद और न रानियां। कुछ भी नहीं। स्वप्न-काल में वह सत्य ही था, उसे आनंद का अनुभव हो रहा था। इस अपेक्षा से उसे यथार्थ माना जा सकता है। एक क्षण के लिए बहुत मिला, किंतु उसके बाद कुछ शेष नहीं बचा, इसलिए मिथ्या मान लिया गया।

पुजारी को सपना आया—पूरा मंदिर घेवरों से भर गया है। उसने पूरे गांव को भोजन का न्यौता दे दिया। गांव वाले आने लगे। पुजारी ने देखा—मंदिर में घेवर का नाम ही नहीं है। उसने सोचा—यह तो अच्छा नहीं हुआ। ऐसा करता हूं—एक बार फिर सो जाऊं, सपना आएगा और मंदिर घेवरों से भर जाएगा। पुजारी सो गया। गांव के लोग आए, दरवाजे को खटखटाया। मंदिर के भीतर आए। पुजारी को उठाया। पुजारी बोला, तुमने अनर्थ कर दिया। अभी मुझे सपना आ रहा था। तुमने बीच में ही जगा दिया। अब सबको भूखा रहना पड़ेगा।

यह सपने की माया है इसलिए मानते हैं—वह क्षणिक है, यथार्थ नहीं है, केवल आभास मात्र है। हम उसे सर्वथा मिथ्या भी न मानें। वह क्षणिक सत्य तो है, एक क्षण का सत्य और अनुभव है। यदि संवेदन न हो तो कोई क्रिया नहीं हो सकती।

एक व्यक्ति कुएं की मेंढ़ पर लेटा था। सपना आया—थोड़ा आगे सरको। वह स्वप्न में ही सरकने लगा

और कुएं में गिर पड़ा। यदि स्वप्न सर्वथा अयथार्थ होता तो वह नींद में क्यों सरकता।

यदि स्वप्न बिलकुल झूठा है तो व्यक्ति सरका कैसे? कुएं में कैसे गिरा? हम स्वप्न को भी सर्वथा मिथ्या नहीं मान सकते। वह मिथ्या भी है, सच भी है। मिथ्या इसलिए है कि कुछ बचता नहीं है। न कहने वाला बचा, न राज्य बचा और न घेवर बचे। किंतु जो वर्तमान का संवेदन है, संवेदन का क्षण है, वह भी एक सचाई है। उसे हम स्वप्न का सत्य कह सकते हैं।

जाग्रत सत्य

एक होता है जाग्रत सत्य। एक व्यक्ति ने निश्चय किया—मैं लोगों को घेवर का भोजन कराऊंगा। उसने कंदोई से घेवर बनवाए। लोगों को आमंत्रित किया और उन्हें भोजन कराया। यह जाग्रत सत्य है। यह कुछ दीर्घकालिक भी होता है। इसमें कुछ होता है। घेवर खाने वालों को उसका मधुर स्वाद आता है, भूख मिटती है। खिलाने वाले को भी आत्मतोष मिलता है। खाने वाले को और खिलाने वाले को भी प्रशंसा मिलती है। स्वप्न सत्य से अलग प्रकृति है जाग्रत सत्य की।

शाश्वत सत्य

एक होता है शाश्वत सत्य। जो क्षणिक है, अल्पकालिक है—वह शाश्वत सत्य की अपेक्षा से मिथ्या है। भोजन किया, भूख बुझी, पेट भर गया। चार घंटे बीते, फिर भूख लग गई। यह भी सत्य है। हम इसे असत्य कैसे मानेंगे? सत्य की कोटियां अलग-अलग हो जाती हैं। यह एकांगी आग्रह है कि केवल आत्मा ही सत्य है, द्रव्य ही सत्य है। पर्याय सत्य न हो तो विश्व का सारा चक्र गड़बड़ा जाए, विश्व की सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाए। आखिर सारा जीवन ही पर्याय का जीवन है। द्रव्य का जीवन ही नहीं है। जिस दिन द्रव्य का जीवन होगा, उस दिन न कोई कहने वाला होगा और न सुनने वाला होगा। न खाने वाला होगा, न खिलाने वाला होगा। कोई शेष नहीं रहेगा, केवल 'है' बचेगा।

अस्तित्व सत्य : पर्याय सत्य

हम दो शब्दों पर ध्यान दें, 'है' और 'होना' या 'करना'। इन दोनों में बहुत अंतर है। 'है'—यह अस्तित्व सत्य है। 'होना' या 'करना'—यह पर्याय सत्य है। जहां अस्तित्व का सत्य है, वहां न कुछ होना है और न कुछ करना है। एक व्यक्ति मुक्त हो गया, परमात्मा बन गया, उसे न कुछ होना है और न कुछ करना है। जो शरीर से मुक्त है, उसके लिए करणीय कुछ भी शेष नहीं बचता। जब तक पर्याय है, तब तक व्यक्ति को कुछ करना और होना है। जहां केवल 'है'—अस्तित्व है, वहां करने या होने की बात नहीं हो सकती। जो व्यक्ति ध्यान के द्वारा सत्य को जानना चाहता है, वह ध्यान करता है। ध्यान एक क्रिया है। एक भूमिका ऐसी आती है, जब ध्यान अक्रिया बन जाता है। जैसे-जैसे राग-द्वेष कम होता है और जब राग-द्वेष मुक्त क्षण आता है तो ध्यान करना नहीं होता, वह स्वयं होता है या वही रहता है। वीतराग या केवली ध्यान करते ही नहीं हैं। उन्हें करने की आवश्यकता ही नहीं होती। ध्यान स्वतः सहज अवतरित होने लगता है। ध्यान का अर्थ है—राग-द्वेष-मुक्त क्षण में जीना। वीतराग में न राग है और न द्वेष। फिर वह ध्यान किसलिए करेगा? वह स्वयं ही ध्यान हो गया। जहां ध्यान करना होता है, वहां स्थिति दूसरी होती है। जिस समय जो करना है, उस समय वही किया जाए, तब वह पर्याय सत्य होता है। करता है ध्यान और मन कहीं दूसरी जगह अटक गया तो वह असत्य बन जाएगा। लोग इस भाषा में बोलते भी हैं। वह आदमी सच्चा है, क्योंकि जो कहता है, वही करता है। यह आदमी झूठा है, क्योंकि कहता कुछ है और करता कुछ और ही है। यह क्रिया-सापेक्ष चिंतन है। यह द्रव्य-सापेक्ष नहीं है, पर्याय-सापेक्ष है।

हमें प्रत्येक बात को सापेक्ष दृष्टि से देखना चाहिए। पर्याय का जो सत्य है, वह सापेक्ष सत्य है। जो द्रव्य का सत्य है, वह निरपेक्ष सत्य है। उसमें क्षेत्र, काल, भाव आदि की कोई अपेक्षा नहीं है। सापेक्ष सत्य से बहुत-सारी अपेक्षाएं जुड़ी हुई हैं। सत्य की खोज का अर्थ है—पर्याय या सापेक्ष सत्य और निरपेक्ष सत्य या द्रव्य-सत्य की खोज।

माध्यम है ध्यान

सत्य की खोज का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है—ध्यान। इसी तरह सत्य की खोज में एक बड़ी बाधा है—चंचलता। जितनी चंचलता, उतनी ही सत्य से दूरी। जितनी चंचलता कम, उतनी ही सत्य से निकटता। ध्यान का प्रयोजन है मन को एकाग्र करना। एकाग्रता की सघनता होने पर जिस स्थिति का निर्माण होता है उसमें व्यक्ति मन की भूमिका से परे चला जाता है। मन की दुनिया में सत्य का बहुत कम ज्ञान होता है। मन की दुनिया विचार, तर्क,

चिंतन और कल्पना तक सीमित है। इसमें जो सत्य उपलब्ध होता है, वह बहुत छोटा है। महान सत्य उन लोगों को मिलता है, जो मन की भूमिका से परे चले जाते हैं। योगी हो या वैज्ञानिक, महान सत्य उन्हें ही उपलब्ध हुआ है, जो मन की भूमिका से परे पहुंचे हैं।

कोई दरवाजा या खिड़की अपने-आप खुलते हैं और प्रकाश प्रस्फुटित हो जाता है। कोई भी बड़ा सत्य चिंतन से उपलब्ध नहीं होता। वह अचिंतन के क्षणों में ही उपजता है। ध्यान का मार्ग चिंतन से अचिंतन की ओर जाने का मार्ग है। जैसे-जैसे ध्यान सधता है, सत्य स्पष्ट होता चला जाता है।

कान का काम शब्द को सुनना है। ध्यान करने वाला भी शब्द को सुनता है और चंचल मन वाला भी शब्द को सुनता है। जिसका मन एकाग्र है, वह केवल शब्द को सुनेगा और जिसका मन चंचल है, वह कोरा शब्द ही नहीं सुनेगा। उसके लिए शब्द मात्र ज्ञेय ही नहीं, प्रिय-अप्रिय भी होता है। शब्द का श्रवण और प्रिय-अप्रिय का अनुभव, ये दोनों साथ-साथ होंगे। यदि संगीत प्रिय लगा तो कहेगा कि अच्छा संगीत है। यदि वह अप्रिय लगा तो कहेगा कि कैसा संगीत है यह! जिसने मन की चंचलता को कम कर लिया है, वह इस प्रकार प्रिय-अप्रिय का संवेदन नहीं करेगा। व्यक्ति रूप को देखता है। जिसका मन चंचल कम है, वह केवल रूप को देखेगा। वहां संबंध होगा ज्ञाता और ज्ञेय का। एक जानने वाला है और एक ज्ञान का विषय है। जिस व्यक्ति का मन चंचल है, वह केवल रूप को नहीं देखेगा। या तो वह आश्चर्य की दृष्टि से देखेगा या नाक-भौं सिकोड़ेगा। यहां संबंध होगा भोक्ता और भोग्य का। एक है ज्ञाता और ज्ञेय का संबंध। दूसरा है भोक्ता और भोग्य का संबंध। जहां व्यक्ति भोक्ता बन जाता है, वहां सत्य की खोज समाप्त हो जाती है। ध्यान के द्वारा सत्य की खोज करें। इसका रहस्य-सूत्र है—हम ज्ञाता बनने का अभ्यास करें और भोक्ता-भाव को कम करें। ज्ञाता-द्रष्टा-भाव को विकसित करें। हम पदार्थ को जानें, केवल जानें। जहां ज्ञान का प्रश्न है, वहां कोई भी पदार्थ अच्छा या बुरा नहीं होता, सुंदर या कुरूप नहीं होता।

भोग्य है पुद्गल

सुरूप-कुरूप, अच्छा-बुरा—ये सारे शब्द भोक्ता-जगत् के गढ़े हुए शब्द हैं। व्यक्ति किसी को बुरा मान लेता है और किसी को अच्छा। जो पसंद आया, वह प्रिय लगा, उसे अच्छा मान लिया। जो पसंद नहीं आया, वह अप्रिय लगा, उसे बुरा मान लिया। यह बोध भोक्ता और भोग्य के संबंध से उपजता है। जहां ज्ञान और ज्ञेय का संबंध है, वहां ज्ञेय ज्ञेय होता है और ज्ञाता ज्ञाता। सत्य की खोज भोक्ता नहीं कर सकता, ज्ञाता कर सकता है। अध्यात्म को अधिक मूल्य देने का अर्थ यही है—जानने वाला आत्मा है। पुद्गल अचेतन है, वह ज्ञाता नहीं है। पुद्गल भोग्य बन सकता है, ज्ञेय बन सकता है, पर ज्ञाता नहीं बन सकता। आत्मा में दोनों शक्तियां हैं। वह ज्ञाता भी है और ज्ञेय भी। एक आत्मा अचेतन को जानती है, इसलिए वह ज्ञाता है। उस आत्मा को कोई दूसरी आत्मा या वह स्वयं जानता है तो वह ज्ञेय बन जाती है। केवल ज्ञाता और ज्ञेय का संबंध रहे, वहीं सत्य की खोज हो सकती है। जहां सत्य की खोज का प्रश्न है, वहां प्रिय-अप्रिय अथवा राग-द्वेष से दूर रहना होता है।

सत्य की खोज का तात्पर्य

ध्यान क्या है? राग-द्वेष से दूर होना, वीतराग होना और वीतरागता की साधना करना ही ध्यान है। जिस क्षण में ध्यान होता है, वह वीतरागता का क्षण होता है। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जब-जब राग-द्वेष-मुक्त क्षण आता है, तब-तब ध्यान घटित होता है। उस क्षण में ज्ञाता और ध्याता, ज्ञेय और ध्येय एक बन जाते हैं। जहां राग-द्वेष का क्षण आता है, वहां न ज्ञाता रहता है और न ध्याता। न ज्ञेय रहता है और न ध्येय। उस समय व्यक्ति और वस्तु भोग्य बन जाते हैं। ऐसी विवेक-चेतना जागे कि हम ज्ञाता और ध्याता को, ज्ञेय और ध्येय को सम्यक् रूप में समझ लें और भोक्ता-भोग्य के प्रपंच से दूर रह सकें। सत्य की खोज ऐसे ही क्षणों में संभव है। महावीर ने कहा—स्वयं सत्य की खोज करो। इसका तात्पर्य है—मन से परे, निर्विकल्प अथवा निर्विचार अवस्था में पहुंचकर सत्य की खोज करो। उसके लिए आवश्यक है—अभ्यास। एक दिन में न भोक्ता-भाव मिटेगा और न ज्ञाता-भाव विकसित होगा, न विचारों की चंचलता मिटेगी। यदि हम निरंतर ध्यान का अभ्यास करते रहें और इस मार्ग पर श्रद्धापूर्वक चलते रहें तो एक दिन लक्ष्य तक पहुंच जाएंगे।

वह लक्ष्य है—मोक्ष। मोक्ष है—शुद्ध आत्मा, शरीर-मुक्त आत्मा। वहां केवल आत्मा है। पर्याय है, पर स्वाभाविक पर्याय है। वैभाविक पर्याय समाप्त हो गए। प्रत्येक व्यक्ति यह सोचे—मैं भोक्ता-भाव में नहीं, ज्ञाता-भाव में अधिक रह सकूं। भोक्ता-भाव जितना कम होगा,

दुख उतना ही कम होगा। व्यावहारिक और स्वाभाविक— दोनों दृष्टियों से यह सुंदर प्रयोग है कि हम अधिक समय तक ज्ञाता बने रहें। जो सत्य है, वही स्थिर है। जिसको हमने सत्य माना है, वह स्थिर नहीं रहेगा। एक समय का सत्य दूसरे समय में असत्य और एक समय का असत्य दूसरे समय में सत्य बन जाता है। सत्य असत्य बनता है और असत्य सत्य। सब सापेक्ष है।

यह दृष्टि साफ रहनी चाहिए कि सत्य के साथ अनेक अपेक्षाएं जुड़ी हुई हैं। हम एकांत दृष्टि से न देखें। सत्य तक पहुंचने में शब्द व्यवधान भी है और साधन भी। शब्द यदि ज्ञान के साथ जुड़ा है तो वह सत्य की ओर ले जाएगा। यदि वह राग-द्वेष से जुड़ा है तो सत्य में व्यवधान पैदा करेगा। शब्द उलझाता भी है और सुलझाता भी है। यदि हम शब्द से परे, विचार से परे पहुंच जाएं, निर्विकल्प या निर्विचार स्थिति को प्राप्त कर लें तो उलझन समाप्त हो जाएगी। प्रेक्षाध्यान का एक प्रयोग है—विचार-प्रेक्षा। हम विचार को देखना शुरू करें, विचार बंद हो जाएगा और निर्विचार अवस्था घटित होने लगेगी। उस स्थिति में ज्ञाता-द्रष्टा-भाव विकसित होगा, अध्यात्म और सत्य का स्पर्श होगा, पर्याय के जगत् से द्रव्य के जगत् की ओर प्रस्थान होगा। यही प्रस्थान आध्यात्मिक व्यक्ति को परम सत्य का साक्षात्कार करा सकता है। ❖

एक दिन बुद्ध ने अपने-शिष्यों से कहा : 'मानलो कि एक व्यक्ति एक लंबी यात्रा पर जा रहा है और उसके सामने एक लंबी-चौड़ी नदी पड़ जाती है, जिसके पास वाला किनारा अनेक दुस्संभावनाओं और खतरों से भरा हुआ है और दूसरी ओर का किनारा सुरक्षित और खतरों से मुक्त है। वहां नदी को पार करने के लिए कोई नैया भी नहीं है और न ही दूसरे किनारे तक जाने के लिए कोई पुल है। और मानलो कि वह व्यक्ति मन में विचार करता है, 'सचमुच यह नदी बहुत लंबी-चौड़ी है, परंतु दूसरे किनारे तक जाने का कोई साधन नहीं है। चलो, मैं खरपतवार और पत्ते आदि जमा करता हूं और अपने लिए एक बेड़ा (कुल्ल) बनाता हूं और उस बेड़े पर बैठकर हाथ और पांव चलाकर उसे खेते हुए मैं दूसरे सुरक्षित किनारे तक पहुंचता हूं।' अब मानलो कि वह व्यक्ति वही करता है जो उसने सोचा। वह बेड़ा तैयार करता है, उसे पानी में उतारता है और हाथ-पांव चलाते हुए उसे खेकर सुरक्षित दूसरे किनारे पर उतरता है।

और फिर, नदी पार करने और दूसरे किनारे तक पहुंचने के बाद मानलो कि वह व्यक्ति कहता है, 'इस बेड़े ने मुझ पर सचमुच बहुत उपकार किया है, क्योंकि इसी के द्वारा और हाथ-पांव चलाते हुए, मैं सुरक्षित दूसरे किनारे पर पहुंचा हूं। क्यों न ऐसे बेड़े को मैं सर पर उठाकर या कंधे पर रखकर ले चलूं और आगे बढ़ूं'।

'तो भिक्षुओ, तुम्हारा क्या विचार है? क्या वह व्यक्ति उस बेड़े के प्रति अपना कर्तव्य पाल रहा होगा?'

'तो उस व्यक्ति को बेड़े के प्रति अपना कर्तव्य निभाने के लिए क्या करना चाहिए?'

'तो भिक्षुओ, क्या उसे स्वयं से यह कहना चाहिए—'इस बेड़े ने सचमुच मुझ पर बहुत उपकार किया है, क्योंकि इसी के द्वारा और हाथ-पांव चलाते हुए मैं सुरक्षित दूसरे किनारे तक पहुँचा हूं; क्यों न मैं इसे यहीं किनारे पर छोड़ दूं और अपनी यात्रा में आगे बढ़ूं।' इस प्रकार वह व्यक्ति अपने बेड़े के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर रहा होगा।

'ठीक इसी प्रकार भिक्षुओ, मैं उस बेड़े की तरह, निर्वाण के साधन के रूप में, न कि एक स्थाई संपत्ति के रूप में, अपनी शिक्षा तुम्हारे सामने रख रहा हूं।

'बेड़े की इस उपमा को स्पष्ट रूप से समझो, धम्म (धर्म) को निर्वाण रूपी तट तक पहुंचने के बाद वहीं छोड़ देना चाहिए।'

—हेलेना रेरिख

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस पर विशेष

जैन संस्कृति और नारी

डॉ. पुष्पलता जैन

प्राचीनकाल से ही नारी ने अपनी शक्ति और बुद्धिमत्ता का उपयोग व्यक्ति और समाज के विविध क्षेत्रों को विकसित करने में किया है। जयनता, प्रीतिमती, कनकमंजरी, देवदत्ता, कामध्वजा आदि आगमकालीन जैन नारियों ने विद्वत्ता के क्षेत्र में स्थान बना लिया था। आज की अनेक ऐसी साधनारत महिलाएं हैं जिन्होंने आध्यात्मिक और साहित्यिक क्षेत्र को भलीभांति समृद्ध किया। गार्हस्थिक परंपरा में भी सैकड़ों महिलाओं को गिनाया जा सकता है जो आज विश्वविद्यालयों और सरकारी प्रशासनिक प्रतिष्ठानों में बड़े-बड़े ओहदों पर काम कर रही हैं। सामाजिक क्षेत्र में भी उनका योगदान झुठलाया नहीं जा सकता।

प्राचीन भारतीय संस्कृति श्रमण और वैदिक संस्कृतियों के समन्वित धरातल पर खड़ी हुई है। यह संस्कृति ही है जो व्यक्ति की मनोवृत्ति और प्रवृत्ति का संकेत भी करती है। इस संस्कृति में नारी के दो रूप दिखाई देते हैं। एक में उसे दासी और भोग्या कहा गया है, तो दूसरा उसको अधिष्ठात्री देवी के रूप में स्वीकार करता है। प्रथम पक्ष उसका पतित और त्रस्त रूप है तो दूसरा उसका विकसित और समादृत रूप है, इसलिए जहां उसे 'अस्वतंत्रता स्त्री-पुरुष प्रधाना', 'स्त्रिया वेश्या तथा शूद्राः येपि स्युः पापयोनयः' जैसे कथनों से बांधा गया है, वहीं 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः', 'असारे खलु संसारे, सारे सारंगलोचना'—जैसे उद्धरण उसके अस्तित्व का बोध कराते हैं। प्रथम पक्ष उसकी स्वयं की कमजोरी तथा उस पर शासन करने वाले पुरुष वर्ग की प्रभुता का प्रमाण है, तो दूसरे पक्ष में उसकी स्वयं की शक्ति प्रदर्शित होती है। तीर्थंकर ऋषभदेव की दोनों पुत्रियों ब्राह्मी और सुंदरी के साथ ही अदिति, उषा, इंद्राणी, इला, भारती, होत्रा, श्रद्धा, वाग्देवी, लोपामुद्रा, गार्गी, मैत्रेयी, घोषा आदि ऐसी नारियां हुई हैं, जिन्होंने वैदिक काल में अपनी आध्यात्मिक शक्ति से समाज को बदलने का यथाशक्य प्रयत्न किया।

तीर्थंकर महावीर ने भी नारी के इन दोनों पक्षों को देखा और परखा। उनकी करुणार्द्रता ने उसके पतित और त्रस्त रूप को दूर करने का पुरजोर प्रयत्न किया। इसलिए अपने संपूर्ण जीवनकाल में उन्होंने दास-दासियों के क्रय-विक्रय का खुलकर विरोध किया। नारी को सम्मान देने के लिए ही अपने साधना-काल के तेरहवें वर्ष में तीर्थंकर महावीर ने एक कठोर अभिग्रह भी धारण किया। उस अभिग्रह में नारी की सिसकियां भरी हुई थीं, उसकी असहायता टपक रही थी और ललाट से प्रतिभा झलक रही थी। हथकड़ी और बेड़ियों में जकड़ी,

मुंडितकेशी, भूखी-प्यासी, नीचे पड़ी राजकुमारी चंदना ऐसी ही नारी के रूप को प्रतिबिंबित करती थी। महावीर ने उस रूप को पहचाना और उससे आहार ग्रहण कर नारी का सम्मान बढ़ाया। अंत में उसे ही संघ-प्रमुखा बनाकर उसकी शक्ति को प्रस्फुटित किया।

नारी के इसी रूप ने तीर्थंकर की माता को जगत्-जननी बनाया, शलाकापुरुषों को जन्म दिया और अपनी मातृत्व शक्ति को प्रदर्शित किया। भगवान महावीर ने इसीलिए संघ की बागडोर चंदना को थमाई। उनके शासन में चौदह हजार साधु थे, जबकि 36 हजार साध्वियां थीं। एक लाख उनहत्तर हजार श्रावक थे, तो तीन लाख अट्ठारह हजार श्राविकाएं थीं। पुरुषों की अपेक्षा नारियों की अधिक संख्या इस बात का प्रमाण है कि वे पुरुषों की अपेक्षा अध्यात्म और शिक्षा के क्षेत्र में कहीं पीछे नहीं थीं। भगवान ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी और सुंदरी ने भगवान बाहुबली को उपदेश देकर उन्हें अहम् भाव से मुक्त कराया। राजमती ने रथनेमि मुनि को भोगों की ओर मुड़ते देख, उपदेश देकर उसे सन्मार्ग दिया। इससे नारी की श्रमणधर्मिता अभिव्यक्त होती है।

श्रमण परंपरा का आद्य एवं प्रवर्तक धर्म है—जैन धर्म, जिसमें समता, पुरुषार्थ, आत्मा एवं निर्वाण की अभूतपूर्व प्रतिष्ठा हुई है; जहां व्यक्ति और समष्टि के बीच यथार्थ धार्मिक-सूत्र अनुस्यूत हुए। इन सूत्रों में वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन के विकास-पथ का मनोरम वातावरण ग्रंथित हुआ, जिसने आध्यात्मिक चिंतन और साहित्य को भरपूर प्रभावित किया।

जैन धर्म व्यक्तिवादी धर्म है। वह व्यक्ति-परिशुद्धि के माध्यम से समाज-परिशुद्धि पर विश्वास करता है। इसी प्रकार व्यक्ति की प्रगति से समाज और राष्ट्र के प्रत्येक अंग की प्रगति को स्वीकार करता है। समाज का एक अभिन्न घटक है—नारी। व्यक्तित्व की पूर्ण निष्ठा उसके साथ गुणात्मक रूप से जुड़ी हुई है। इसलिए आध्यात्मिक क्षेत्र में भी उसकी वैयक्तिकता पर सैद्धांतिक रूप से आंच नहीं आनी चाहिए थी, पर इतिहास के पृष्ठों पर इस नैतिकता को तिलांजलि देने के उद्धरण भी मिलते हैं और आध्यात्मिकता के कवच से उसकी परतंत्रता तथा निर्बलता को जकड़ देने के उदाहरण भी उपलब्ध हैं।

जैन धर्म के अनुसार मोह प्रबलतम शत्रु है। आध्यात्मिकता को शुष्क करने और सांसारिकता की बेल को हरा-भरा करने का मुख्य आधार मोह ही है। इस दृष्टि से पुरुष वर्ग ने नारी को सर्वाधिक आसक्ति का कारण माना और एकांगी दृष्टिकोण से विचार कर उसकी घनघोर निंदा की। यहां तक कि उसके शब्दार्थों का विश्लेषण भी इसी आधार पर हुआ है। भगवती आराधना में लिखा है कि नारी के समान मनुष्य का कोई दूसरा शत्रु नहीं है। इसलिए इसे 'नारी' कहते हैं। इसी तरह पुरुष का वध करने वाली होने से 'वधू', दोषों की उत्पादिका होने से 'स्त्री', प्रमाद उत्पन्न करने वाली होने से 'महिला' कहा गया है। इन अर्थों के पीछे चिंतकों की यह भूमिका रही है कि नारी के कारण पुरुष वर्ग अनेक दोषों की ओर आकर्षित होता है। इसलिए वह हेय है, निंदनीय है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस पर विचार किया जाए तो यही कहा जा सकता है कि अपराधी अपना अपराध किसी दूसरे पर थोपकर स्वयं मुक्त अथवा निर्दोष होना चाहता है।

जैन संस्कृति लैंगिक, धार्मिक तथा सामाजिक समता की पक्षधर है। जिसमें चाहे नारी हो या पुरुष, प्राणी मात्र अपने स्वयं के पुरुषार्थ से वीतरागी होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है, परंतु इस संदर्भ में जैन धर्म के दिगंबर और श्वेतांबर संप्रदाय में मतभेद हैं।

श्वेतांबर संप्रदाय के अनुसार स्त्री की मुक्ति हो सकती है, क्योंकि पुरुष के समान उसमें भी वे सभी गुण विद्यमान हैं, जिनकी मोक्ष-प्राप्ति में आवश्यकता होती है। यह परंपरा वीतरागता की सर्वोच्च स्थिति की प्रतीकात्मकता के रूप में नग्नत्व को स्वीकार नहीं करती। उसके अनुसार वीतरागता अंतरंग का चिह्न है, बहिरंग का नहीं। अतः उसकी परमोच्च अवस्था प्राप्त करने के लिए कोई लिंग आदि का बंधन नहीं माना जा सकता। अतः नारी भी मुक्ति प्राप्त कर सकती है। सिद्ध के पंद्रह प्रकारों में स्त्रीलिंग सिद्ध, नपुंसकलिंग सिद्ध, गिहिलिंग सिद्ध जैसे प्रकार भी दिए हैं।

दिगंबर परंपरा इसे स्वीकार नहीं करती। उसके अनुसार नारी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकती। वह अपने पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत करती है—

(1) मोक्ष के कारणभूत ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उसमें प्रकर्षता नहीं होती। जिस प्रकार उसमें पाप की प्रकर्षता न होने से वह सप्तम नरक नहीं जाती, उसी प्रकार पुण्य अथवा वीतरागता की उतनी प्रकर्षता उसमें नहीं होती कि वह मोक्ष प्राप्त कर सके। पुरुष में पुण्य और पाप दोनों की

प्रकर्षता होती है, इसलिए उसे मुक्ति तथा सप्तम नरक-गमन का विधान बताया गया है।

(2) नारी चूंकि सचेल संयमी है, इसलिए उसका आचार गृहस्थ संयमी के समान होता है। संयम का अभाव मोक्ष की प्राप्ति में बाधक होता ही है। इसीलिए साधुओं के द्वारा वह अवंदनीय कही गई है। प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ. 330) में प्राचीन आगम की एक गाथा का उल्लेख है, जिसमें कहा गया है कि सौ वर्ष की दीक्षित आर्यिका भी सद्यःदीक्षित साधु के द्वारा वंदनीय नहीं है—

वारिसय दिक्खियाए अज्जाए अज्ज दिक्खिओ साहू।
अभिगमण-वंदण-णमंसण विषयेण सो पुज्जो।।

(3) वस्त्रादि बाह्य परिग्रह तथा अनुरागादि आभ्यंतर परिग्रह भी स्त्रियों में अधिक रहता है। यदि उन्हें मोक्ष-अधिकारिणी माना जाए तो गृहस्थों को भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है, जिसे स्वीकारा नहीं जा सकता। जीतकल्प में आई गाथा से भी यही प्रकट होता है।[1] वस्त्र ग्रहण करने में प्राणियों का अपघात तथा संमूर्छन जीवों की उत्पत्ति होती है। इस संदर्भ में यह प्रश्न उपस्थित किया जा सकता है कि विहार करने से भी इस प्रकार की हिंसा होती है। पर यह प्रश्न युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि प्रयत्नपूर्वक, संयमपूर्वक चलने पर भी यदि प्राणिघात होता है तो वह हिंसा नहीं, अहिंसा है। बाह्याभ्यंतर परिग्रह का त्याग ही वास्तविक संयम है। यह वस्त्र, याचन, सीवन, प्रक्षालन, शोषण, निक्षेप, आदान, हरण आदि कारणों से मनःसंक्षोभकारी है। अतः उसे संयम का विघातक कारण कैसे न माना जाए?[2]

यही विचार-शृंखला उत्तरकालीन दिगंबर ग्रंथों में प्रतिबिंबित हुई है। इसके पूर्व आचार्य कुंदकुंद ने सीलपाहुड़ (गाथा 29) में नारी को श्वान, गर्दभ, गौ आदि पशुओं के समकक्ष रखा है, जो मुक्ति प्राप्त करने के अयोग्य हैं। प्रवचनसार की कुछ प्रक्षेपक गाथाओं में तो इसे और भी स्पष्ट कर दिया गया है कि नारी भले ही सम्यग्दर्शन से शुद्ध हो, शास्त्रों का उसने अध्ययन किया हो, तपश्चरण रूप चारित्र से युक्त हो, पर वह कर्मों की संपूर्ण निर्जरा नहीं कर सकती। इन उत्तरकालीन गाथाओं को आचार्य कुंदकुंद जैसे महनीय आध्यात्मिक-दार्शनिक संत के साथ जोड़ देने का तात्पर्य यह है कि यह विचार मूल जैन परंपरा से संबद्ध न होकर उत्तरकालीन कुछ आचार्यों की देन है।

जो भी हो, यह परंपरा अब दिगंबर परंपरा के रूप में स्थिर हो चुकी है। उसके अनुसार कर्मों की संपूर्ण निर्जरा करने के लिए नारी को भवांतर में पुरुषवेद ग्रहण करना अनिवार्य है। अतः वह तद्भव मोक्षगामी न होकर भवांतर मोक्षगामी होती है। इसका कारण यह बताया गया है कि नारी चंचल स्वभावी तथा सचेल होती है तथा उसके प्रथम संहनन नहीं होता। दिगंबर संप्रदाय की विचारधारा के अनुसार नारी तीर्थंकर नहीं हो सकती और सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रियों में उत्पन्न नहीं हो सकता।

जैसा हम पीछे लिख चुके हैं, श्वेतांबर परंपरा के अनुसार मुक्ति-प्राप्ति के लिए नग्नत्व एक आवश्यक तत्त्व नहीं है। फलतः उस परंपरा में नारी को मुक्ति की अधिकारिणी माना गया है। इतना ही नहीं, तीर्थंकर मल्लिनाथ को पुरुष न बताकर उन्हें स्त्री का रूप स्वीकारा गया है।

दिगंबर-श्वेतांबर परंपरा के समन्वित रूप यापनीय संघ ने भी नारी को मुक्ति-प्राप्ति के योग्य माना है। यह परंपरा उत्कृष्ट शुक्लध्यान से उत्कृष्ट रौद्रध्यान की कोई व्याप्ति नहीं मानती। उसके अनुसार जहां मोक्षप्रापक शुक्लध्यान की योग्यता है वहां सप्तम नरकप्रापक रौद्रध्यान की योग्यता का कोई नियम नहीं है। अतः नारी सप्तम नरक के योग्य न होने पर भी शुक्लध्यान के योग्य हो सकती है। इस विचारधारा का समर्थक एक उल्लेख ललित विस्तरा (पृ. 400) में 'यापनीय तंत्र' के नाम से उपलब्ध होता है।

नंदिसूत्र, प्रज्ञापना, शास्त्रवार्ता समुच्चय आदि श्वेतांबर ग्रंथों में भी इस विषय की पर्याप्त मीमांसा की गई है और मल्लि को तीर्थंकर बताकर यह स्पष्ट किया गया है कि नारी भी शारीरिक और आध्यात्मिक विकास की पूर्ण अधिकारिणी है। उनके अनुसार वस्त्रग्रहण से वीतरागता की कोई हानि नहीं होती अन्यथा पीछी, दवा, भोजन आदि भी इसी श्रेणी में आ जाएगा। अतः वस्त्र को नारी की मुक्ति-प्राप्ति में बाधक नहीं माना जा सकता।

इसके बावजूद, यह आश्चर्य का विषय है कि श्वेतांबर परंपरा नारी को दृष्टिवाद की अधिकारिणी नहीं मानती। यह हम जानते हैं कि दृष्टिवाद दुरूह और जटिल था। परंपरा से चूंकि नारी शारीरिक और मानसिक दुर्बलताओं का पिंड मानी गई है इसलिए उसे दृष्टिवाद जैसे दुर्बोध आगम ग्रंथ के अध्ययन से दूर रखा गया है। इस संदर्भ में दो परंपराएं हैं—प्रथम परंपरा का सूत्रपात जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने किया है। जिसके अनुसार दृष्टिवाद के अध्ययन के निषेध के पीछे नारी के तुच्छत्व,

अभिमान, इंद्रिय चांचल्य, मतिअंध आदि मानसिक दोष हैं (विशेषावश्यक भाष्य, गाथा 552)। द्वितीय परंपरा को हरिभद्रसूरि ने प्रारंभ किया जो नारी में अशुद्धि-रूप शारीरिक दोष दिखाकर उसका निषेध करते हैं।

इन दोनों परंपराओं में एक ओर नारी को शारीरिक और मानसिक दोषों से आबद्ध माना गया और दूसरी ओर उसमें मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता को स्वीकार किया गया है।

नारी की योग्यता के संदर्भ में दिगंबर और श्वेतांबर परंपराएं कुल मिलाकर बहुत दूर नहीं हैं। उन दोनों में नारी को पुरुष के समकक्ष बैठा नहीं देखते। इतना ही नहीं, प्राकृतिक दुर्बलताओं की दुहाई देकर और अपनी कमजोरी छिपाकर उसे ही दोषी ठहराया गया है। नारी की दुरवस्था का मूल कारण कदाचित् यही रहा है कि उसे सांपत्तिक और धार्मिक अधिकार नहीं दिए गए। आचार्य जिनसेन ने कदाचित् इसे महसूस किया और उसे भी पुत्रों की भांति संपत्ति में समान अधिकार प्रदान किए—पुत्रयश्च संविभागाहीः समं पुत्रैः समांशकेः। इसी तरह उसे पूजा-प्रक्षाल का अधिकार मिला। अंजना, मैनासुंदरी, मदनवेगा आदि ऐतिहासिक किंवा पौराणिक नारियों ने जिन-पूजा-प्रक्षाल किया ही है। यह सर्वविदित ही है। किया जाना भी चाहिए। जब उसे कर्मों की निर्जरा करने का अधिकार है, क्षमता है तब उसे पूजा-प्रक्षाल से रोकना एक अमानवीय तथा असामाजिक कृत्य ही समझा जाना चाहिए। ऐसी परंपराओं के विरोध में नारी को एक आवाज से आगे बढ़ाकर धार्मिक रूढ़ियों को समाप्त करना, करवाना चाहिए।

इसी प्रकार साध्वी को साधु से निम्न स्थान क्यों दिया जाए? यदि साध्वी चिरदीक्षिता है और योग्या है तो उसे साधारण नव-दीक्षित साधु से भी न्यूनतर क्यों माना जाता है? संघनायक के स्थान पर उसे नियुक्त करने का साहस क्यों नहीं होता? ये सारे प्रश्न ऐसे हैं जिनका समाधान आवश्यक है। इसके यथार्थ समाधान के लिए पुरुषवर्ग को अपने अहंभाव का विसर्जन कर समता और सहानुभूतिपूर्वक नारी के दमित, उपेक्षित अधिकारों को देने का साहस करना चाहिए।

परंपरा से नारी एक मूक दर्शिका रही है। अधिकार देने वाला और अधिकार छीनने वाला पुरुषवर्ग ही रहा है। उसी की कृपा पर उसका समूचा जीवनयापन था। समतावादी जैन धर्म और समाज के व्यावहारिक क्षेत्र में यह विषमतावादी दृष्टिकोण निश्चित ही कोई बाहरी प्रभाव कहा जाएगा और उससे भी कहीं अधिक पुरुषवर्ग की शासनवृत्ति को जिम्मेदार ठहराया जाएगा। श्रद्धा-भक्ति के आवेग ने और अशिक्षा की चपेट ने नारी को कुचला है और उसे कुचलने के लिए कथित धार्मिक नियमों के कठघरे में भी उसे बंद कर दिया। दहेज जैसी अमानवीय समस्याओं को भी इसी ने जन्म दिया। आज वस्तुतः इन परंपराओं के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है।

प्राचीनकाल से ही नारी ने अपनी शक्ति और बुद्धिमत्ता का उपयोग व्यक्ति और समाज के विविध क्षेत्रों को विकसित करने में किया है। जयनता, प्रीतिमती, कनकमंजरी, देवदत्ता, कामध्वजा आदि आगमकालीन जैन नारियों ने विद्वत्ता के क्षेत्र में स्थान बना लिया था। आज की अनेक ऐसी साधनारत महिलाएं हैं जिन्होंने आध्यात्मिक और साहित्यिक क्षेत्र को भलीभांति समृद्ध किया। गार्हस्थिक परंपरा में भी सैकड़ों महिलाओं को गिनाया जा सकता है जो आज विश्वविद्यालयों और सरकारी प्रशासनिक प्रतिष्ठानों में बड़े-बड़े ओहदों पर काम कर रही हैं। सामाजिक क्षेत्र में भी उनका योगदान झुठलाया नहीं जा सकता।

संगीत, नृत्य और चित्रकलाएं भी नारियों की प्रतिभा से समादृत हुई हैं। तीर्थंकरों की यक्षिणियों और देवियों के रूप में उनकी मूर्तियों के पास बैठने का भी सौभाग्य मिला है। पद्मावती, कूष्मांडनी, चक्रेश्वरी आदि देवियों की पूजा की लोकप्रियता इस बात का प्रमाण है कि समाज नारी को पूरा सम्मान देता है। गुल्लेकायि अज्जि का नाम भी इस संदर्भ में भुलाया नहीं जा सकता जिसने चामुण्यराय का मानभंग कर गोम्टेश्वर बाहुबलि की मूर्ति के महामस्तकाभिषेक का पथ प्रशस्त किया था।

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि श्रमण संस्कृति का समतावादी और पुरुषार्थवादी दृष्टिकोण नारी शक्ति को जाग्रत करने के लिए पर्याप्त है। वह समूचे परिवार को एक आदर्शमय वातावरण देकर उसमें नए जीवन का संचार कर सकती है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की अमृतमई विचारधारा उसको तथा उसके परिवार को सुखी और समृद्ध करने के लिए एक सशक्त साधन है। अनेकांतवाद और स्याद्वाद से पारिवारिक और सामाजिक विद्वेष से मुक्त रह सकते हैं। जैन धर्म के ये

सिद्धांत नारी-जीवन को एक सुखद और सुरभिमय वातावरण देकर उच्चतम प्रगतिपथ पर पहुंचा सकते हैं।

सर्वेक्षण करने पर यह पता चलता है कि जैन नारियां आज की आपाधापी संस्कृति में स्वयं को भलीभांति समायोजित कर सकती हैं। उनकी पगडंडियां महापथ बन सकती हैं और उनका सदाचरण शांति पथ का अग्रदूत सिद्ध हो सकता है। बहकी-बहकी युवा पीढ़ी को जिस आत्मीयता और आदर्श के साथ नारी नया प्रकाश दे सकती है, वह कदाचित् पुरुष वर्ग नहीं कर सकता। यही उसकी शक्ति है और यही उसकी प्रतिभा है, जिसका उपयोग समाज को आज नहीं तो कल अवश्य करना पड़ेगा, बशर्ते नारी अपनी अस्मिता को बचाए, बनाए रखे। ❖

संदर्भ सूची :

1. अचेलक्कुहेसिव संज्जा हररायपिंड किदिकम्म, जीतकल्प, 1972
2. प्रमेयकमलमार्तण्ड, पृ. 331-332। ❖❖

फार्म-4 (नियम 8 देखिए)

1.	प्रकाशन स्थान	: गंगाशहर, बीकानेर
2.	प्रकाशन अवधि	: मासिक
3.	मुद्रक का नाम	: दीपचन्द सांखला
	क्या भारतीय नागरिक है	: हां
	पता	: सांखला प्रिण्टर्स, सुगन निवास, चंदनसागर, बीकानेर
4.	प्रकाशक का नाम	: तरुण सेठिया
	क्या भारतीय नागरिक है	: हां
	पता	: जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा शाखा कार्यालय तेरापंथी भवन, गंगाशहर 334401 (बीकानेर) राजस्थान
5.	संपादक का नाम	: शुभू पटवा
	क्या भारतीय नागरिक है	: हां
	पता	: भीनासर, बीकानेर
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते, जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पत्र के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	: जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1

मैं तरुण सेठिया एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

तरुण सेठिया
प्रकाशक के हस्ताक्षर

कर्म और बंध : एक विवेचन

डॉ. साध्वी गवेषणा

जो मनोवृत्तियां आत्मा को कलुषित करती हैं, जैन मनोविज्ञान की भाषा में वह कषाय है। आत्मा में राग या द्वेष-भाव का उद्दीप्त होना कषाय है। राग-द्वेष कर्म के बीज हैं। जैसे दीपक अपनी ऊष्मा से बत्ती के द्वारा तेल को आकर्षित कर उसे अपने शरीर (लौ) के रूप में बदल देता है, वैसे ही आत्मारूपी दीपक अपनी राग-भाव रूप ऊष्मा के कारण क्रियाओं रूप बत्ती द्वारा कर्म-परमाणु तेल को आकर्षित कर उसे अपने कर्म-शरीररूपी लौ में बदल देता है। उमास्वाति ने इच्छा, मूर्च्छा, काम, स्नेह, गृद्धता, ममता, अभिनंदन, प्रसन्नता, अभिलाषा आदि को राग के पर्यायवाची शब्द स्वीकार किया है। इसी प्रकार ईर्ष्या, द्वेष, रोष, दोष, परिवाद, असूया, मत्सर, वैर, प्रचंडन आदि शब्द द्वेष के पर्याय हैं।

बंधन क्यों होता है? आत्मा और पुद्‌गल को जोड़ने वाला सेतु क्या है? कर्म-बंधन का आधार क्या है? दार्शनिकों ने विभिन्न दृष्टिकोण से इस पर चिंतन किया है। जीव और कर्म के संश्लेष को बंध कहते हैं।[1] कलिकालसर्वज्ञ हेमचंद्रसूरि के अभिमत से जीव कषाय के कारण कर्मयोग्य पुद्‌गलों को ग्रहण करता है, यह बंधन है। जीव की परतंत्रता का कारण बंध है।[2] जीव और कर्म के इस संश्लेष को पूज्यपाद ने क्षीर-नीर के उदाहरण से समझाया है।[3]

कर्म बंधन का आधार : विभिन्न दृष्टिकोण

बौद्ध दर्शन के अनुसार राग-द्वेष और मोह से कर्मों की उत्पत्ति होती है। रागादि से मन, वचन और काय की प्रवृत्ति होती है। मानसिक क्रियाजन्य रूप कर्म, वासना और वचन एवं कायजन्य संस्कार कर्म अविज्ञप्ति कहलाता है।[4] यद्यपि बौद्धमत में आत्मा जैसी स्वतंत्र एवं शाश्वत वस्तु का अस्तित्व नहीं है, ऐसा होने पर भी शरीरादि अनात्मा में जो आत्म-बुद्धि है, वह मिथ्याज्ञान और मोह है, जो कर्म-बंध का निमित्त है।[5]

योग-दर्शन में बंधन और दुखों के मूल पांच क्लेश हैं[6]—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।

सांख्यदर्शन में इन पांचों को नामांतर से अभिहित किया है—अविद्या को तमस्, अस्मिता को मोह, राग को महामोह, द्वेष को तामिस्र, अभिनिवेश को अंधतामिस्र।

सांख्य दर्शन में बंध विपर्यय पर अवलंबित है और विपर्यय ही मिथ्या ज्ञान है। विपर्यय से प्राकृतिक बंध, वैकारिक बंध और दाक्षणिक बंध—इस प्रकार तीन तरह से बंधन होता है—1. प्रकृति को आत्मा मानकर उसकी उपासना करना प्राकृतिक बंध। 2. भूत, इंद्रिय, अहंकार बुद्धि—इन विकारों की आत्मा के रूप में उपासना करना वैकारिक बंध है। 3. इष्ट आपूर्त में संलग्न होना दाक्षणिक बंध है।

अनात्मा में आत्म-बुद्धि मिथ्याज्ञान है। यह जैनों के मिथ्यात्व के समकक्ष है। योगदर्शन में क्लेश संसार-वर्धक है। सभी क्लेशों का मूल अविद्या है। सांख्य ने इसे ही विपर्यय कहा है।

जैन दर्शन में बंध-कारण की चर्चा शास्त्रीय एवं लौकिक—दोनों दृष्टियों से की है। कर्मशास्त्रीय आधार से कषाय और योग दोनों बंध के हेतु हैं। इनका ही विस्तार मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग आदि पांच आश्रव हैं।[7] लौकिक दृष्टि से जैनागमों में राग-द्वेष मोह-बंधन के निमित्त हैं।

आश्रव

जीव की मानसिक, वाचिक और कायिक क्रियाएं आश्रव हैं। नदियों से समुद्र प्रतिदिन जल से भर जाता है, वैसे ही मिथ्याज्ञान आदि स्रोतों से आत्मा में कर्म आते हैं—उसे आश्रव कहते हैं।[8] आश्रवों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से मिलता है। आचार्य कुंदकुंद ने चार आश्रवों को ही मान्यता दी है[9]—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग। समयसार में प्रमाद को कषाय का ही एक रूप मानकर बंधन के चार कारणों की व्याख्या मिलती है। इनमें योग बंधन-कारक होते हुए भी जब तक कषाय के साथ युक्त नहीं होता है, बंधन का कारक नहीं है। आचार्य विनयविजयजी ने कुंदकुंद का ही अनुकरण किया है।[10] ठाणांग[11], समवायांग[12] में आश्रव के पांच प्रकार हैं। उमास्वाति पांच भेदों के समर्थक हैं। उन्होंने आश्रव के बयालीस भेद भी किए हैं[13]—पांच इंद्रिय, चार कषाय, पांच अव्रत, पचीस क्रियाएं और तीन योग।

बौद्ध दर्शन में भी आश्रव शब्द का प्रयोग है। उन्होंने तीन आश्रवों का उल्लेख किया है—काय, भव और अविद्या।[14]

पूज्यपाद ने मिथ्यात्व के अन्य पांच प्रकारों का भी उल्लेख किया है—1. एकांत, 2. विनय, 3. विपरीत, 4. संशय और 5. अज्ञान।[15]

यदि हम बंधनों के कारणों की समीक्षा ऐतिहासिक दृष्टि से करें तो स्पष्ट होता है कि पहले ममत्व (Attachment) को बंधन का कारण माना, फिर आत्म-विस्मृति यानी प्रमाद को। प्रमाद एक प्रकार का असंयम है। इसलिए वह अविरति या कषाय में आ जाता है। सूक्ष्मता से देखने से मिथ्यात्व और अविरति—ये दोनों कषाय के स्वरूप से भिन्न नहीं हैं। इसलिए कषाय और योग को प्रधानता दी है।[16]

उत्तराध्ययन में राग, द्वेष और मोह को जो बंधन का हेतु कहा है—इनमें मोह, मिथ्यात्व एवं कषाय का संयुक्त रूप है। माया और लोभ का समावेश राग में तथा क्रोध और मान का द्वेष में समावेश है।[17] क्रोध, मान, माया और लोभ—इन चारों का संग्राहक शब्द कषाय है। उमास्वाति ने बंध हेतु पांच आश्रवों को मान्य किया है।

मिथ्यात्व

मिथ्यात्व का अर्थ है—मिथ्यादर्शन, जो सम्यग्दर्शन का विपक्ष है। यथार्थ ज्ञान का अभाव मिथ्यात्व या अविद्या है। योग दर्शन के अनुसार अविद्या के चार पाद हैं।[18] ये हैं—1. अनित्य में नित्य का ज्ञान, 2. अपवित्र में पवित्रता का ज्ञान, 3. दुख में सुख का ज्ञान, 4. अनात्मा में आत्मा का ज्ञान।

अविरति

विरति का अभाव और अत्याग भाव का नाम अव्रत है। पौद्‌गलिक सुखों की अव्यक्त आकांक्षा के कारणों को समझना चाहिए। इसे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समझा जा सकता है। मनोविज्ञान में मन के तीन विभाग हैं। ये हैं—अदस् मन (Id), अहं मन (Ego) और अधिशास्ता मन (Super Ego)। **1. अदस् मन**—इसमें आकांक्षाएं जन्मती हैं और सभी इच्छाएं इसी मन में उत्पन्न होती हैं। **2. अहम् मन**—समाज-व्यवस्था से जो नियंत्रण प्राप्त होता है, उससे आकांक्षाएं नियंत्रित हो जाती हैं। कुछ परिमार्जित हो जाती हैं। अहं मन इच्छाओं को क्रियान्वित नहीं करता। **3. अधिशास्ता मन**—यह अहम् पर अंकुश रखता है। इच्छाओं को नियंत्रित करता है। अविरति अर्थात् भीतर की अदम्य आकांक्षा—इसे कर्मशास्त्रीय भाषा में अविरति आश्रव कहा है। मनोविज्ञान में उसे अदस् मन कहा है।

प्रमाद आश्रव

अध्यात्म के प्रति होने वाले आंतरिक अनुत्साह का नाम प्रमाद है। दूसरा अर्थ विस्मृति है अर्थात् अपने-आपको भूलना।

कषायाश्रव

कषाय शब्द कष्+आय—इन दो शब्दों से बना है। कष् का अर्थ है—संसार, कर्म या जन्म-मरण, जिससे प्राणी कर्मों से बांधा जाता है। पुनः-पुनः जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है—वह कषाय है।[19]

जो मनोवृत्तियां आत्मा को कलुषित करती हैं, जैन मनोविज्ञान की भाषा में वह कषाय है। आत्मा में राग या द्वेष-भाव का उद्दीप्त होना कषाय है। राग-द्वेष कर्म के बीज

हैं।[20] जैसे दीपक अपनी ऊष्मा से बत्ती के द्वारा तेल को आकर्षित कर उसे अपने शरीर (लौ) के रूप में बदल देता है, वैसे ही आत्मारूपी दीपक अपनी राग-भाव रूप ऊष्मा के कारण क्रियाओं रूप बत्ती द्वारा कर्म-परमाणु तेल को आकर्षित कर उसे अपने कर्म-शरीररूपी लौ में बदल देता है।[21] उमास्वाति ने इच्छा, मूर्च्छा, काम, स्नेह, गृद्धता, ममता, अभिनंदन, प्रसन्नता, अभिलाषा आदि को राग के पर्यायवाची शब्द स्वीकार किया है। इसी प्रकार ईर्ष्या, द्वेष, रोष, दोष, परिवाद, असूया, मत्सर, वैर, प्रचंडन आदि शब्द द्वेष के पर्याय हैं।[22]

कषाय आश्रव—समवाओं में चार कषाय रूप मोह के बावन नामों का निर्देश है[23]—क्रोध के दस, मान के ग्यारह, माया के सतरह, लोभ के चौदह रूप हैं।

क्रोध के दस नाम इस प्रकार हैं—क्रोध, कोप, रोष, दोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, चांडिक्य, मंडण और विवाद।

मान के ग्यारह प्रकार इस तरह हैं—मान, मद, दर्प, स्तंभ, आत्मोत्कर्ष, गर्व, परि-परिवाद, आक्रोश, अपकर्ष, उन्नत और उन्नाम।

माया के सतरह नाम ये हैं—माया, उपधि, निकृति, वलय, ग्रहण, न्यवम, कल्क, कुरूक, दंभ, कूट, वक्रता, किल्विष, अनादरता, ग्रहनता, वंचनता, परिकुंचनता और सातियोग।

लोभ के चौदह प्रकार बतलाए हैं। ये हैं—लोभ, इच्छा, मूर्च्छा, कांक्षा, गृद्धि, तृष्णा, भिध्या, अभिध्या, कामाशा, भोगाशा, जीविताशा, मरणाशा, नंदी और राग।

योग-आश्रव

वीर्यांतराय के क्षयोपशम से प्राप्त वीर्यलब्धि योग की प्रयोजक होती है। उस समर्थ आत्मा का मन, वचन, काय वर्गणा नैमित्तक आत्म-प्रदेश का परिपंद योग है।[24] काम, वचन और मन की क्रिया योग है।[25] कर्म-बंधन में योगभूत होने से इसे आश्रव कहा है।[26] कषाय सहित और कषाय रहित आत्मा का योग क्रमशः सांपरायिक एवं ईर्यापथ कर्म का बंध हेतु आश्रव होता है।[27] पहले से दसवें गुणस्थान तक के जीव न्यूनाधिक मात्रा में सकषायी हैं और ग्यारहवें आदि आगे के गुणस्थान में जीव कषाय रहित है। शुभयोग पुण्य का बंध-हेतु है[28] और अशुभयोग पाप का बंध-हेतु है।

यहां ज्ञातव्य तथ्य यह है कि पहले चार कारणों का अभाव हो तो मात्र योग से कर्म-वर्गणाओं का आकर्षण होकर बंध होता है। वह ईर्यापथिक बंध कहलाता है। यह बंध ठीक वैसा ही है, जैसे चलते समय सूखे वस्त्र पर गिरे हुए बालू के कण गति की प्रक्रिया में आते हैं, फिर अलग हो जाते हैं, वह वास्तविक बंध नहीं। अविरति, प्रमाद और कषाय को अलग-अलग कारण माना है, किंतु इनमें भी बहुत अंतर नहीं है। प्रमाद को व्यापक अर्थ में लें तो कषायों का अंतर्भाव उसमें हो जाता है, कारण—कषाय की विद्यमानता में ही प्रमाद का अस्तित्व है। अनुपस्थिति प्रमाद है, किंतु नाम-मात्र के लिए।

इसी प्रकार अविरति के मूल में भी कषाय है। यदि कषाय को व्यापक अर्थ में स्वीकार करें तो अविरति और प्रमाद—दोनों उसमें समाविष्ट हो जाते हैं।

वर्तमान में एक बहुचर्चित और मननीय प्रश्न है कि मिथ्यात्व और कषाय में प्रमुख स्थान किसे दें? जबकि दोनों कर्म-बंध के कारण हैं। इस संदर्भ में दो विचारधाराएं सामने आती हैं। आचार्य विद्यानंदजी ने कषाय को प्रमुख कारण माना है, क्योंकि मिथ्यात्व भी कषाय की उपस्थिति में ही होता है।

कानजी स्वामी आदि ने मिथ्यात्व को कारण माना है। लगता है—ये दोनों एकांगी दृष्टिकोण हैं। कषाय और मिथ्यात्व दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं। कषाय के अभाव में न मिथ्यात्व की सत्ता है, न मिथ्यात्व के अभाव में कषाय ही रहता है। ताप और प्रकाश के समान ये सहजीवी हैं।

जैन दर्शन के अनुसार मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय के अभाव में मात्र क्रिया (योग) से भी बंध होता है। कर्म-परमाणुओं की मात्रा (प्रदेश) और गुण (प्रकृति) का निर्धारण क्रिया करती है। यद्यपि क्रिया के स्वरूप का निश्चय कषायों पर निर्भर होता है। अंतिम रूप से कषाय ही कर्म पुद्गलों की प्रकृति का निश्चय करते हैं, लेकिन निकटवर्ती कारण की दृष्टि से क्रिया (योग) ही कर्म-पुद्गलों के बंध की प्रकृति का निमित्त है।[29]

वेदांत में बंध का कारण अज्ञान है। जो मूल कारण है। अज्ञान सत्-असत् से भिन्न अनिवर्चनीय है। सत् का ब्रह्म की तरह नाश नहीं होता। असत् आकाश-कुसुमवत् प्रतीति में नहीं आता। अज्ञान का नाश होता है और प्रतीति में भी आता है। अतः अज्ञान ही संसार परिभ्रमण का हेतु है।

वैशेषिकों में बंध का हेतु अविद्या है—**इंद्रिय दोषात्संस्कार दोषाच्चाविद्या।** मनोविज्ञान की भाषा में इसका कारण आत्म-सम्मोहन है। इस प्रकार कर्म-बंध के

विभिन्न कारणों की चर्चा करने से इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आत्मा की शुभ-अशुभ क्रियाएं ही कर्म-वर्गणाओं के आकर्षण में निमित्त हैं। जैसे चुंबक लोहे को अपनी ओर आकृष्ट करता है और कपड़ा पानी को सोख लेता है, वैसे ही जीव अपने राग-द्वेष युक्त परिणामों से पार्श्ववर्ती अनंतानंत कर्म-वर्गणाओं को अपनी ओर खींच लेता है। वैज्ञानिक अभिमत से वृक्ष से टूटा हुआ फल ऊपर आकाश की तरफ न जाकर नीचे ही गिरता है। उसका कारण भूमि में अवस्थित आकर्षण शक्ति है। भूमि का नैसर्गिक स्वभाव है कि प्रत्येक वस्तु को अपनी तरफ खींचती है। विज्ञान ने आकर्षण शक्ति का अस्तित्व स्वीकार किया है, वैसे ही जैनाचार्यों को संकल्प-विकल्प-जन्य आकर्षण शक्ति मान्य है। जिससे जीव के साथ कर्म-पुद्गल-परमाणु संबद्ध हो जाते हैं। ❖

संदर्भ सूची :

1. उत्तराध्ययन 28/14, नेमीचंद्रीय टीका—बंधश्च जीवकर्मणोः संश्लेषः।
2. नवतत्त्व साहित्य संग्रह, गाथा 133
3. तत्त्वार्थ 1/4, सर्वार्थसिद्धि
4. प्रमाणवार्तिक अलंकार, पृ. 75
5. सुत्त निपात 3/12/33, विशुद्धि मग्ग 17/302
6. पातंजल योगदर्शन 2/3
7. तत्त्वार्थसूत्र 8/1
8. राजवार्तिक 1/4/16
9. समयसार 5/164, 165
10. शांतसुधारस (आश्रव-भावना)
11. स्थानांग 5/109
12. समवायांग 5
13. तत्त्वार्थसूत्र 6/6
14. संयुक्त निकाय 36/8, 43/7/3
15. (क) सर्वार्थसिद्धि 8/1/375
    (ख) राजवार्तिक 8/1/28/594
    (ग) बारह अणुवेक्खा गा. 48
16. तत्त्वार्थ 8/1
17. स्थानांग 2/2
    दोहिं ठाणेहिं पाव कम्मा बंधति... रागेण य दोषेण य। रागे दुविहे परसते... माया य लोभे य। दोसे दुविहे... कोहे य माणे य।
18. पातंजल योगदर्शन 2/5
19. अभिधान राजेंद्र कोश खंड 3, पृ. 395
20. उत्तराध्ययन 32/7
21. तत्त्वार्थसूत्र, 1
22. प्रशमरति 18, 19
23. समवाओ 52
24. राजवार्तिक 9/7/11
25. तत्त्वार्थसूत्र 6/1
26. वही 6/2
27. वही 6/5
28. वही 6/3
29. कर्मग्रंथ भाग 2, पृ. 121 ❖❖

कृपया ध्यान दें

जैन भारती के लिए रचनाएं भेजते समय कृपया निम्नोक्त बिंदुओं का अवश्य ध्यान रखें—

● आपकी रचना कम से कम 1500-2000 शब्दों से लेकर 2500-3000 शब्दों के मध्य हो। कुछेक आलेख जैन भारती के एक पृष्ठ से भी कम आकार के होते हैं, जो हमारे लिए अपर्याप्त हैं। जैन भारती के लिए ऐसे आलेख काम में लेना संभव नहीं। अतः इतने छोटे आलेख न भेजें।

●● रचनाएं 'फुल स्केप' कागज पर एक तरफ हाथ से लिखी या टाइप की हुई हों। पूरा हाशिया अवश्य छोड़ें। दो पंक्तियों के बीच भी पर्याप्त स्थान होना जरूरी है।

●●● फोटोकॉपी न भेजें अथवा सुस्पष्ट हो तो ही भेजें।

कृपया उपरोक्त हिदायतों की ओर पूरा ध्यान देकर हमें सहयोग करें।

अनुभूति

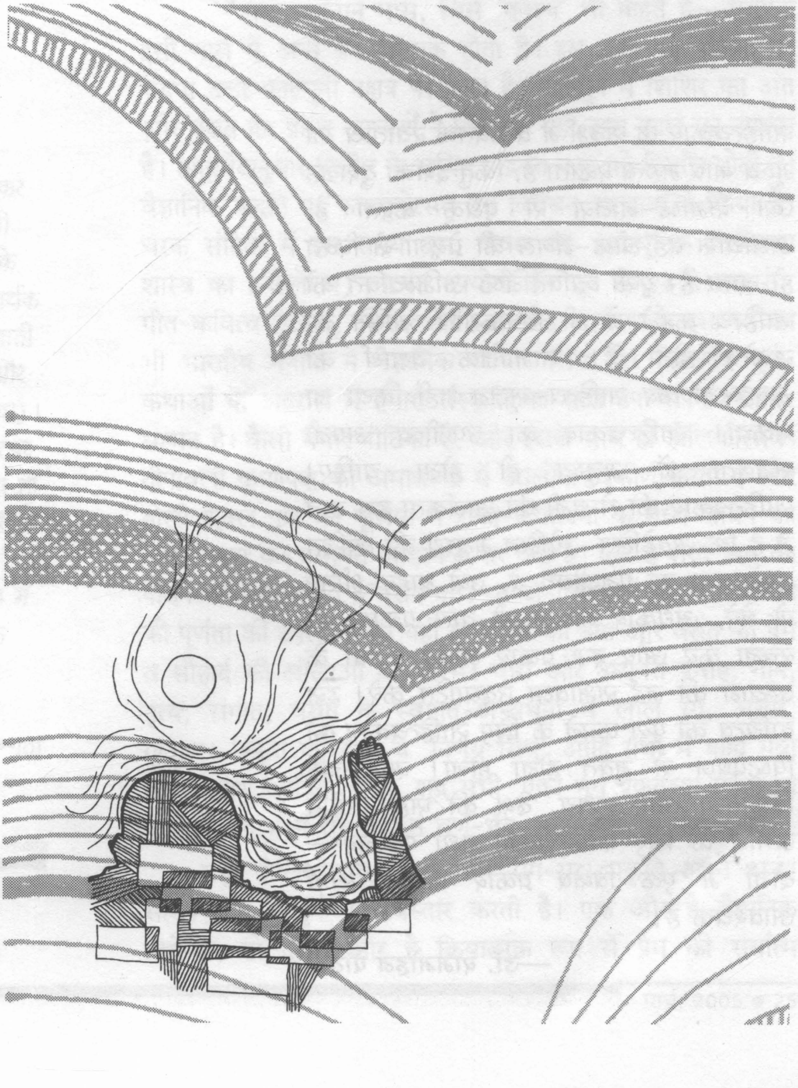

साहित्यकार के संदर्भ में वैयक्तिक स्वातंत्र्य का मूल्य शीर्ष महत्त्व रखता है, किंतु इसका दुराग्रह उसे समष्टि-मानस से पृथक् करता है, अनायास वह लोक-मंगल की प्रेरणा से रिक्त हो जाता है। ऐसी व्यक्तिनिष्ठ अभिव्यक्ति को साहित्य कहने में भी विवेकशील व्यक्ति को संकोच होता है। सामाजिक यथार्थ की अवहेलना कर साहित्य-सृजन नहीं किया जा सकता। साहित्यकार का उपजीव्य अपनी समग्रता में मनुष्य ही होना चाहिए। साहित्यकार की लेखनी की सार्थकता इस बात में है कि अवहेलित-उपेक्षित मनुष्य की खंडित आशालता को पुनर्जीवन दे, उसे बाहर-भीतर से घेरे, अंधकार को मारने वाले प्रकाश की रचना करे और इस प्रकार मानव-मूल्यों के उत्थान की नई संभावना उद्घाटित करे। इस दायित्व को पूरा करने के लिए साहित्यकार को पिष्टपेषण से मुक्त होना होगा। सामाजिक विकृतियों और समय, देश की सही प्रतीति जगाने के लिए साहित्यकार तथा पत्रकार— दोनों में एक विशेष प्रकार की तटस्थता आवश्यक है।

—डॉ. राममोहन पाठक

होली

प्रेम की सर्वात्म अनुभूति : अध्यात्म की जागृति

प्रो. कल्याणमल लोढ़ा

होली में ज्ञानाग्नि प्रज्वलित कर कामना-आसक्ति-वासना के संस्कारों को जला कर भगवत विभूति को आनंद देती है। स्वामी प्रेमानंद कहते हैं, 'यही तो है आराध्य के प्रति आत्मनिवेदन, आत्मसमर्पण की सार्थक सर्वोच्चता। इंद्रियां शुद्ध और शांत हो जाती हैं। होली भगवान के लिए आत्मज्ञान और जीव के लिए आत्मनिवेदन है (तत्त्व कथा)। भगवान सृष्टि के प्रत्येक तत्त्व में लीलात्पर हैं। झूलनोत्सव तो अज्ञात भाव से सर्वत्र हो रहा है—पर देखता कौन है? झूलन से ही तो निराकार साकार रूप में विवर्तन और प्रवर्तन करता है। ऋतु की बाह्य उष्णता में साधक अग्निकुंड के प्रकाश में वास्तविक स्वरूप की उपलब्धि करता है—क्योंकि 'देयर इज हीट इवन इन ए पीस आफ आइस'—बर्फ में भी कहीं-न-कहीं उष्णता अंतर्निहित है।

संवत्सर की अनवरत प्रक्रिया और ऋतुचक्र के साथ आ गया फाल्गुन मास, जिसे 'तपस्य' भी कहते हैं—क्योंकि इसी मास में अन्न का परिपाक होता है। इस मास की पूर्णिमा पर चंद्रमा उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र पर रहता है। फाल्गुन में शिशिर का अंत और वसंत का प्रारंभ आचार्यों ने गिना है। यही उष्ण काल का उपक्रम है। आयुर्वेदानुसार शिशिर के संचित उद्रिक्त कफ की निवृत्ति होती है। वैज्ञानिक पद्धति पर फाल्गुनोत्सव का विवेचन आचार्यों ने किया है। चरक संहिता में इस समय धूम, कवल ग्रह (आधुनिक चिकित्सा शास्त्र का इनहेलेशन) अत्यंत उपयोगी हैं (सूत्र 6-24)। राग-रंग, गीत-कवित्व-उत्सव, आनंद और स्वैच्छिक आचरण के इस पर्व का भी भारतीय मनीषा ने वैज्ञानिक आधार लिया है। निस्संदेह पुरा-कथाओं के अंतराल में हमारी संस्कृति का सारा उपस्थापन विज्ञान-सम्मत है। कैसी गंभीर पीठिका है, और इसके साथ ही होलिकोत्सव। दीपावली कृष्णपक्ष की अमावस्या में आलोक विकीर्ण करती है और होली शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा में राका-ज्योत्स्ना के मध्य जीवन को रसमय बना कर उन्मुक्त क्रीड़ामग्न कर देती है। एक है शरद ऋतु का पावन पर्व और दूसरा है वसंत का। इन दोनों ऋतुओं में ही तो जीवन की पूर्णता की उपलब्धि है। यही है शिशिर का अंत और वसंत की प्रेम व सौहार्द की लीलाओं का प्रारंभ। चारों ओर उन्मुक्त प्रवाह, गान, नृत्य, संगीत, वसंत के स्वागत-अभ्यर्थना में लाल रंग, अबीर, गुलाल। 'स्मृति कौस्तुभ' व 'निर्णय सिंधु' आदि ग्रंथों में कहा गया है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी 'एकी भूय प्रकृतव्या क्रीड़ा या फाल्गुने सदा।' न रंग-भेद, न वर्ण-भेद, न संकोच, न संकीर्णता।

वही होलिकोत्सव, चारों ओर राग-रंग। प्रकृति अपने अनंत सौंदर्य और माधुर्य का विस्तार करती है। एक ओर है वैज्ञानिक विवेचन, तो दूसरी ओर है क्रियात्मक रूप से प्रेम की सर्वात्म

अनुभूति—अध्यात्म की जागृति। दीपावली अपने प्रकाश से और होली अपने आवरण में सृष्टि-लीला का रहस्य प्रकट करती है, अप्राकृत प्रेम का तीर्थ—वृंदावन! सभी उस महासागर में अवगाहन करते रहे हैं। कैसा सुंदर समन्वय है—आदर्श जीवन का। भक्तगण आनंद-उल्लास से भाव-समाधि में विभोर हो जाते हैं।

पौराणिक कथाएं : रघु के राज्य में थी राक्षस भाली की पुत्री। ढुंढ़ा राक्षसी शिव से वरदान पाकर बालकों को नित्य पीड़ा पहुंचाने वाली। पकाए अन्न को अडाड शब्द करती नष्ट करने वाली और अंत में बालकों द्वारा उसका वध। लकड़ी के कंडों पर रक्षोघ्न मंत्रोच्चारण से अग्नि हवन। ....और वह थी हिरण्यकशिपु की बहन होलिका राक्षसी। उसने शिव-कृपा प्राप्त कर भयंकर अत्याचारों से समस्त जीव-जगत् को त्रस्त कर दिया और अंत में हुआ होलिका-दहन। भक्त प्रह्लाद को जलाने के कुत्सित कर्म में वही स्वयं जली। विष्णु-भक्त प्रह्लाद बच गया।

प्रह्लाद के साथ ही उसकी परम प्रेम रूपा परानुरक्ति, अनन्य भक्ति का स्मरण हो आता है। पद्म-पुराण के अनुसार वह कयाधू का दो बार पुत्र हुआ। प्रथम जन्म में विष्णु द्वारा वध। उनके द्वितीय जन्म की कथा और माता के गर्भ में प्रह्लाद का नारद द्वारा विष्णु-भक्ति की महिमा का श्रवण। कितने कष्ट सहे प्रह्लाद ने—पिता ने हाथी द्वारा कुचलाया, सर्प द्वारा डंसाया गया, पर्वत से गिराया गया—पर वह सदैव अपने आराध्य द्वारा रक्षित रहा—विष्णु-पुराण तो यही कहता है—और फिर नृसिंहावतार—उसकी अविचल विष्णु-भक्ति और वह अद्भुत प्रार्थना नृसिंह स्तोत्र।

मन्ये तदर्पित मनोवचे हितार्थ।
प्राण पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः।।

प्रभु-भक्त चांडाल भी हरि-विमुख ब्राह्मण से श्रेष्ठ है। ....अभूतपूर्व और अद्भुत होता है—मथुरा के निकट फालेन में होलिका-दहन। इस गांव का नाम प्रह्लादपुरी भी है। भव्य मंदिर में प्रह्लाद व नृसिंह का विग्रह और मंदिर के निकट प्रह्लाद कुंड। चालीस फुट ऊंची विशालकाय होलिका का दहन, जिसकी विकराल लपटों के मध्य मंदिर का पंडा नंगे पांव उसके पार सकुशल जाता है—अडिग विश्वास के साथ। पुनः लौटूं होलिकोत्सव पर। दक्षिण भारत में यह शिव द्वारा मदन-दहन के रूप में मनाया जाता है। पांच दिनों के पश्चात् 'रंग-पंचमी' होती है, जिसमें फाग खेली जाती है। पंजाब में गुरु गोविंदसिंह ने इसे 'होल्ला मोहल्ला' का रूप दिया। इस अवसर पर सहस्र-सहस्र सिख आनंदपुर गुरुद्वारा में एकत्र होकर हर्षोल्लास, आनंद-उमंग के साथ यह उत्सव मनाते हैं।

अत्यंत प्राचीन है होली का यह उत्सव—जैमिनी और शबर के अनुसार सभी आर्यों द्वारा संपादित यह होलिका। डॉ. काणे (धर्मशास्त्र का इतिहास, पंचम खंड) बताते हैं कि 'राका होला के' की व्याख्या देवपाल ने इस प्रकार की है—'यह एक विशेष कर्म है, जिसे स्त्रियां अपने सौभाग्य के लिए संपादित करती हैं—इसका अधिदेव राकापति पूर्णचंद्र है'—'होला कर्म विशेषः सौभाग्याय स्त्रीणां प्रातरनुष्ठीयते। तत्र होलाके राका देवता'। वात्स्यायन के कामसूत्र (1, 4, 42) की जयमंगल टीका में परस्पर जल छोड़ने का उल्लेख है। हेमाद्रि (पृ. 106) इसे 'हुताशनी' कहता है। वराह-पुराण इसे लोक समृद्धि का कारण बताते हुए 'पटवास विलासिनी' कहता है। लिंग पुराण में बाल क्रीड़ोत्सव। आर्यों के इस प्राचीन उत्सव की कितनी कथाएं हैं!

और ब्रज की होली! वह तो अनन्य है। वसंत पंचमी से लेकर ब्रजमंडल के कण-कण में यह समाहित है। प्रभु की आरती में गुलाल का प्रयोग, भक्तों पर गुलाल की वर्षा। महाशिवरात्रि से दोल और ढप पर रसिया राग, मानसरोवर गांव के राधा-रानी के मंदिर से इसका श्रीगणेश। और फिर नंदगांव के हुरिहारों का बरसाने की पीली पोखर में स्नानादि के उपरांत वहां लट्ठमार होली। तत्पश्चात् नंदगांव में भी वही लट्ठमार आयोजन, उत्सव और फिर लीला का मंचन। तत्पश्चात् फाल्गुन की पूर्णिमा को होलिका-दहन। और दूसरे दिन धुलेड़ी। रंग-गुलाल के साथ द्वारकाधीश की शोभा यात्रा। तानों का गायन। ऐसी है ब्रज की अप्रतिम होली।

प्राचीन ऋषियों ने इस पर्वोत्सव को आध्यात्मिक रंग भी दिया है। गोपिकाएं कात्यायनी पूजा करके अपना चित्त शुद्ध करती हैं। चीरहरण से बाह्य आवरण नष्ट हो जाते हैं और सर्वत्र सर्वव्यापी ब्रह्म ही दृष्टिगत होते हैं—'जहां-जहां नेत्र तहां-तहां कृष्णस्फूर्ति—यत्र-यत्र मनोयाति तत्र-तत्र तव स्वरूपम्।' प्रकृति का चिरंतन सौंदर्य सबको अतींद्रिय आकर्षण और आनंद की ओर ले जाता है।

होली में ज्ञानाग्नि प्रज्वलित कर कामना-आसक्ति-वासना के संस्कारों को जला कर भगवत विभूति को आनंद देती है। स्वामी प्रेमानंद कहते हैं, 'यही तो है आराध्य के प्रति आत्मनिवेदन, आत्मसमर्पण की सार्थक सर्वोच्चता।

शेष पृष्ठ 47 पर

जैन वाङ्मय में होली पर्व : एक वृत्तांत

मुनि मदनकुमार

भारतीय जन-जीवन में दीपावली की तरह होली भी एक लोकप्रिय पर्व है। जैसे दीपावली प्रकाश और समृद्धि का पर्व है, वैसे ही होली मानसिक विकास, प्रेम-सौहार्द और स्वास्थ्य का पर्व है। जैन परंपरा में दीपावली पर्व का संबंध तो भगवान महावीर के निर्वाण से जुड़ा हुआ है, पर होली का पर्व क्यों मनाया जाता है और उसका उत्स क्या है? यह प्रश्न स्वाभाविक है। इस का रहस्योद्घाटन जैन परंपरा के संवाहक श्री सुव्रताचार्य ने किया है। उनके द्वारा वर्णित कथन को मानव मन की जटिलता का निदर्शन कहा जा सकता है। काम और कुटिलता ने मनुष्य को किस तरह पकड़ रखा है और वह व्यक्ति को कितना क्रूर बना देती है—इस सचाई को अनावृत करने वाली एक मार्मिक घटना का उल्लेख आता है।

घटना पूर्वांचल की है। जेतपुर नगर में राजा जयवर्मा, रानी मदनसेना और प्रधान मतिचंद्र का सुशासन था। राजा जयवर्मा के प्रशासन-कौशल का प्रभाव पूरे पूर्वांचल में था। उनके नगर में अनेक धनाढ्य और उदारचेता लोग बसते थे। उनमें मनोरम नाम का एक सेठ भी था। घर में विपुल धन-संपदा थी, चार पुत्रों का सुयोग भी था, पर पुत्री का अभाव था। सेठ और सेठानी ने कन्या-प्राप्ति के लिए अनेक मनौतियां भी कीं। अपनी इस कामना-पूर्ति के लिए उन्होंने अनेक प्रयत्न किए और कालांतर में उन्हें एक रूपवती पुत्री की प्राप्ति हुई। माता-पिता बहुत खुश हुए। चिर अभिलषित कामना पूर्ण होने से घर में आनंद छा गया। अतिशय प्रेम से प्रीणित माता-पिता ने सोचा कि पुत्री का नामकरण भी अद्वितीय होना चाहिए। शहर के प्रमुख ज्योतिषी से उन्होंने परामर्श किया। ग्रह-नक्षत्र का योग मिलाकर ज्योतिषी ने सुता का नाम होलिका रख दिया। यह नाम सर्वथा नया होने से माता-पिता को बहुत पसंद आया। द्वितीया के चांद की तरह होलिका बढ़ने लगी और क्रमशः चौसठ कलाओं में प्रवीण युवती बन गई। उसका सौंदर्य निखर उठा। अनेक गुणों से वह परिपूर्ण बन गई। ज्यों ही होलिका ने यौवन की दहलीज पर पैर रखा, माता-पिता का चिंतातुर होना स्वाभाविक था। उन्होंने सोचा कि वय, विद्या, रूप और गुणों से युक्त

योजना की सफलता से हर्षित होकर ढंढ़ा शीघ्रता से कामपाल के पास पहुंची। उसे सारे संकेत समझाते हुए ढंढ़ा बोली—'तुम मंदिर में प्रच्छन्न रहना। तुम्हारा और होलिका का मिलन हो जाएगा।' पूर्व प्रचारित होने से चतुर्दशी के दिन बहुत लोग इकट्ठे हुए। होलिका सज-धजकर और पूजा का थाल लेकर अपनी भाभियों के साथ मंदिर-स्थल पर पहुंची। गीतों की स्वर-लहरी गूंज उठी। उल्लासभरे वातावरण में ढंढ़ा बोली—'पूजा-परिक्रमा के लिए होलिका भीतर अकेली जाएगी।' ढंढ़ा के निर्देश से होलिका निर्बाध भीतर चली गई। लोगों को बाहर ही रोक लिया गया।

वर मिलने पर ही पुत्री सुखी हो सकती है। इस विचार से भावित होकर वे योग्य वर की खोज करने लगे।

यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि चाह के अनुसार राह निकल ही आती है। देवदत्त नाम के एक सेठ और देवदत्ता सेठानी से संपर्क सधा। सेठ मनोरम को लगा कि देवदत्त सेठ का पुत्ररत्न जशदेव रूपवान और गुणवान होने के साथ ही बहत्तर कलाओं में भी निष्णात है। मनोनुकूल योग्य वर मिलने से सेठ मनोरम को अतिशय प्रसन्नता का अनुभव होने लगा। अत्यंत हर्षोल्लास के साथ अपार दहेज देकर सेठ मनोरम ने बेटी होलिका का विवाह कर दिया। दोनों का दांपत्य जीवन सुखपूर्वक बीतने लगा। दोनों ही परिवार आनंद का अनुभव करने लगे। उन्हें लगने लगा कि श्रेष्ठ मुहूर्त में श्रेष्ठ कार्य संपन्न हुआ है। दोनों ओर हर्षातिरेक का वातावरण था। कुछ समय बीतने पर होलिका पीहर आई और माता-पिता आदि से मिलकर बहुत प्रसन्न हुई। माता-पिता और सास-श्वसुर की स्नेहमयी दृष्टि पाकर वह मन में आह्लाद और धन्यता का अनुभव करने लगी। पीहर आए कुछ ही दिन बीते थे कि पीछे से होलिका के पति जशदेव के शरीर में तीव्र वेदना हो गई। यथोचित उपचार लगने से पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। सारे परिवार में कुहराम मच गया।

होलिका को भी जब मृत्यु का संवाद मिला तो वह स्तब्ध रह गई। उसे लगा कि उस पर दुख का पहाड़ ही गिर गया है। घर-परिवार में हाहाकार हो गया और पूरे नगर में दुख की लहर फैल गई। जैसे-तैसे होलिका सुसराल पहुंची। अंतिम संस्कार के कार्य संपन्न हुए। उसे लगने लगा कि जैसे उसके सामने से परोसी हुई थाली ही छीन ली गई हो। वह इस विरह-वेदना से निरंतर व्यथित रहने लगी। मुख उसका म्लान और शरीर उसका कृश होने लगा। माता-पिता के लिए उसकी यह स्थिति चिंतनीय और असह्य हो गई। वे भी किंकर्तव्यविमूढ़ बन गए। आखिर वे अपनी पुत्री को अपने घर ले आए। बाल-विधवा होने से उसे अत्यंत लाड़-प्यार से रखने लगे। उसे बहुत सम्मान देने लगे। शुभाशुभ कर्म अवश्य ही भोक्तव्य हैं—ऐसा मानकर वे सभी सांत्वना का अनुभव करने लगे। अनुभवी पुरुषों की वाणी भी यही है—

कृतकर्मक्षयोनास्ति, कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं, कृतकर्म शुभाशुभम्।।

करोड़ों वर्षों के बीत जाने पर भी किए हुए कर्मों का नाश नहीं होता है। यह सच है कि किए हुए शुभाशुभ कर्मों को अवश्य ही भोगना पड़ता है।

अर्तिकाल में मनुष्य धर्म की ओर आकृष्ट होता ही है। धर्म ही इस अवस्था में आलंबन बनता है। धर्म को मंगल और शरण रूप में स्वीकार भी किया जाता है। धर्म से अनुप्राणित होकर दुख-मुक्ति की दिशा में अग्रसर हुआ जा सकता है। होलिका भी धर्मावलंबन को स्वीकार कर समाधिस्थ बनने का प्रयास करने लगी। सुख के बीते हुए दिनों और भोगे हुए भोगों की स्मृतियां उसे कभी-कभी भाव-विह्वल कर देती थी। अन्यमनस्कता की स्थिति ने उसे घेर रखा था। उसे अपना जीवन बोझिल प्रतीत होने लगा था। लगता था कि जीवन की रसवत्ता समाप्त हो चली है।

एक दिन की बात कि होलिका गवाक्ष में बैठी थी और आने-जाने वाले लोगों की ओर दृष्टिपात कर रही थी। उसी समय बंग देश के राजा त्रिभुवनपाल का पुत्र कामपाल उधर से गुजरा। वह कामदेव की तरह अत्यंत सुंदर और पुण्यवान था। रूप उसका निखर रहा था। संयोग से उसकी दृष्टि होलिका पर पड़ी और होलिका की दृष्टि भी उस पर। आंखों के उस मिलन ने दोनों को मुग्ध कर दिया। दोनों एक-दूसरे के अप्रतिम सौंदर्य को देखकर आश्चर्य में डूब गए। परस्पर चुंबकीय आकर्षण का अनुभव करने लगे। मधुर मुस्कान फूट पड़ी। दोनों एक-दूसरे के प्रति सर्वात्मना समर्पित हो गए। उस क्षणिक मिलन ने उनके भीतर मानसिक आह्लाद पैदा कर दिया और काम-सेवन की भावना हिलोरें लेने लगी। कुमार कामपाल कामातुर हो उठा। काम-विजय की दुष्करता बतलाए हुए अनुभवी पुरुषों ने लिखा है—

नारी देह दीवी करी, पुरुष पतंगिया होय।
जग सघलूं खूची रह्यूं, विरला निकले कोय।।

होलिका की काम-चेतना भी उद्विग्न हो उठी। वह भी आकुल-व्याकुल-सी रहने लगी। मानसिक अशांति से खाना-पीना भी कम हो गया। नींद भी गायब हो गई। कार्य की रुचि समाप्त हो गई। संकल्प-विकल्प उभरने लगे। चेहरे पर निराशा के भाव तथा निढ़ाल-निःश्वास की-सी स्थिति रहने लगी। हर समय मन बेचैन रहने लगा।

होलिका को इस हालत में देख-देखकर उसके माता-पिता भी चिंताग्रस्त रहने लगे। अर्थ की प्रचुरता होने से उन्होंने नानाविध चिकित्सा, तंत्र, मंत्र, यज्ञ, पूजा आदि विविध उपक्रम शुरू किए, किंतु उपचार के सारे प्रयत्न निष्फल प्रतीत होने लगे। रोग तो भावात्मक था, वह औषधि-सेवन से भला कैसे मिटता? माता-पिता भी स्थिति की भयावहता को देखकर खिन्नमना रहने लगे।

इसी बीच सेठ ने लोगों के मुख से एक घटना सुनी। सेठ को थोड़ी आशा बंधी। सुना कि चंद्ररौद्र नामक एक वैदिक भांड की पुत्री है ढंढ़ा। जिसकी शादी अचलभूति नामक ब्राह्मण से हुई थी, किंतु कर्म-योग से वह असमय ही मर गया। ढंढ़ा विधवा हो गई। इतना ही नहीं, निर्धन होने से ढंढ़ा के खाने के भी लाले पड़ने लगे। विधि की विडंबना से उसके माता-पिता भी मर गए। वे भी कंगाल अवस्था में ही थे। ढंढ़ा के सामने भीख मांगने के सिवाय कोई चारा नहीं रह गया। उसने भीख मांगना शुरू किया, पर पापोदय से वह हर किसी को अशुभ लगने लगी। उसे भीख मिलना भी दुष्कर हो गया।

जीवन बड़ी कठिनाई से बीतने लगा। लोग उसका मुख देखना भी अपशकुन मानने लगे। उसे दोनों कुलों की भक्षिणी मानकर अपमानित करने लगे। भीख मिलना भी संभव नहीं रह गया। इस तरह दुख भोगती हुई उस ढंढ़ा का, किसी सुयोग से, एक तापस-स्त्री से संपर्क हुआ। तापसी के संयोग से ढंढ़ा ने सम्मोहन, वशीकरण, गर्भपात, गर्भधारण, चूर्ण, योग, मंत्र-यंत्र-तंत्र आदि अनेक प्रकार की विद्याएं सीख लीं। फिर तो वह कपाल पर लाल तिलक लगा, देवी की पूजा करती और गेरू रंग के वस्त्र धारण कर इस नए संस्करण से बड़ी पूजा-प्रतिष्ठा और मान-सम्मान पाने लगी। यही नहीं, वह अब माताजी के नाम से विश्रुत हो गई। इस संवाद से सेठ के भीतर आशा का संचार होने लगा। उसकी चामत्कारिक उपलब्धियों को सुनकर यह लगने लगा कि शायद वह होलिका को भी दुखमुक्त कर दे। सेठ ने उसे अपने घर बुलाया।

सेठ दंपती ने उसके चरण छूए, खूब मान-सम्मान देते हुए कहा—माताजी! हमारे एक ही पुत्री है। इसे आप कृपा कर दुखमुक्त कीजिए। हमारे लिए आपका यह उपकार जीवन-भर स्मरणीय रहेगा। हम यही समझेंगे कि आपने हमें एक पुत्री दी है। यों कहते हुए सेठ ने होलिका को अपने पास बुलाया और उसे दिखाया। ढंढ़ा ने उसकी नब्ज को बड़े धैर्य से देखा, किंतु रोग पकड़ में नहीं आया। उसने समझ लिया कि इसके कोई शारीरिक रोग नहीं है। ढंढ़ा स्त्री-चरित्र की भी विशेषज्ञा थी। उसने मन-ही-मन जान लिया कि रोग के अनुरूप चिकित्सा होने से ही यह पूर्णतया स्वस्थ हो सकेगी। उसकी मनःस्थिति को जानने के लिए ढंढ़ा उसे एकांत में ले गई। उसे अतिशय स्नेह देती हुई, उसके सिर पर हाथ रखते हुए बोली—तुम्हारा मन इतना चिंतित और व्यथित क्यों है? मुझे सच-सच बताओ। तुम मेरी पुत्री के समान हो। तुम निःसंकोच होकर अपने मन की बात कहो। मैं तुम्हारे मन की कामना अवश्य पूरी करा दूंगी। तुम सर्वथा निश्चिंत हो, अपने मन की व्यथा कह दो।

ढंढ़ा का अपरिमित स्नेह और सबल आश्वासन पाकर होलिका बोली—'मैं राजकुमार कामपाल को चाहती हूं। आप मेरा उनसे संयोग करा दें। ऐसा होने से ही मैं जीवित रह सकूंगी, अन्यथा....। आप कृपा कर मुझे जीवनदान दें।' ढंढ़ा ने यह जानते ही उसे पूरा विश्वास दिलाया और स्पष्ट शब्दों में बोली—'तुम बिल्कुल चिंता मत करो। मैं तुम्हारा कार्य शीघ्र संपादित कर दूंगी।' इस तरह उसे आश्वस्त करते हुए माता-पिता के समक्ष ले आई। मंत्रोच्चार के साथ उसके हाथ में एक 'डोरा' बांधते हुए बोली—'सेठजी! आज से इसके स्वास्थ्य में क्रमशः सुधार चालू हो जाएगा तथा इसके मन में भी शांति रहेगी।' ढंढ़ा के इन शब्दों से माता-पिता को बहुत सांत्वना मिली। वे बहुत प्रसन्न हुए। उसे इष्ट वस्त्र-भोजन आदि प्रतिलाभित करने लगे। ढंढ़ा भी प्रतिदिन आकर झाड़ा-मंत्रोच्चार करने लगी तथा माता-पिता से कहने लगी कि अब यह क्रमशः स्वस्थ हो रही है। पहले से काफी अच्छी लग रही है। ढंढ़ा के आने पर होलिका भी प्रसन्नचित्त हो जाती। नहीं आने पर वह उदास रहती। माता-पिता ने सोचा कि इन दोनों के बीच गहरी प्रीति हो गई है।

ऐसा देखकर उन्होंने अपने मकान के पास ही एक छोटा-सा कुटीर बना दिया। अपने ही घर से उसके लिए सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगे। ढंढ़ा भी खुश हो गई कि उसका छल-बल अब पूरे चढ़ाव पर है। अब वह कामपाल से मिली। उसे भी पूरी जानकारी दी। कामातुर कामपाल भी इस संवाद से अत्यधिक खुश हुआ। करबद्ध होकर बोला—'माताजी! इस कार्य को आप निरापद बना दीजिए। मैं सदा आपका आभारी रहूंगा।' राजकुमार की मनःस्थिति जानकर उसने इस कार्य को शीघ्र क्रियान्वित करने की योजना बना डाली। उसने अपने दिमाग की उर्वरता का भरपूर उपयोग करते हुए सेठ दंपती के पास आकर कहा—'इस आने वाली चतुर्दशी को रविवार है। उस दिन प्रहर रात्रि जाने के बाद गांव के बाहर स्थित सूर्य मंदिर में होलिका को गाजे-बाजे के साथ पूजा करनी होगी। इससे वह पूर्णरूपेण स्वस्थ हो जाएगी।' सेठ-दंपती ने इस सुझाव को सहर्ष स्वीकार कर लिया और तैयारियां शुरू कर दीं। होलिका भी चिर-अभिलषित मनोरथ की पूर्णता सन्निकट देखकर अत्यधिक खुश रहने लगी।

योजना की सफलता से हर्षित होकर ढंढ़ा शीघ्रता से कामपाल के पास पहुंची। उसे सारे संकेत समझाते हुए ढंढ़ा बोली—'तुम मंदिर में प्रच्छन्न रहना। तुम्हारा और होलिका का मिलन हो जाएगा।' पूर्व प्रचारित होने से चतुर्दशी के दिन बहुत लोग इकट्ठे हुए। होलिका सज-धजकर और पूजा का थाल लेकर अपनी भाभियों के साथ मंदिर-स्थल पर पहुंची। गीतों की स्वरलहरी गूंज उठी। उल्लासभरे वातावरण में ढंढ़ा बोली—'पूजा-परिक्रमा के लिए होलिका भीतर अकेली जाएगी।' ढंढ़ा के निर्देश से होलिका निर्बाध भीतर चली गई। लोगों को बाहर ही रोक लिया गया। होलिका पहले से भीतर छिपे कामपाल से मिली और अपनी काम-पिपासा शांत करने लगी।

अचानक किसी पुरुष ने इन दोनों को देख लिया। होलिका ने सोचा—'अब तो लज्जा जाएगी और लोगों में भारी अपवाद होगा। सबकी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाएगी। इतना ही नहीं, इस समाज में जीना दूभर हो जाएगा।' छल को विस्तार देती हुई होलिका कामपाल से बोली—'ज्यों ही मैं मंदिर से बाहर निकलूं, आप मुझे सबके देखते हुए पकड़ लेना और धक्का लगा देना।' कामपाल ने पागलपन का ऐसा ही प्रदर्शन करते हुए वही कर डाला तथा—'यह स्त्री मेरी है, यह स्त्री मेरी है....' ऐसे चिल्लाता हुआ भाग गया। होलिका कपट से सिर पीटती हुई चीख पड़ी—'मेरा पर-पुरुष से स्पर्श हो गया है। मुझे अब अपनी शुद्धि करनी पड़ेगी।' सतीत्व का दिखावा करती हुई वह मरने के लिए उद्यत होकर बोली—'अब मैं घर नहीं जाऊंगी। मैं तो अग्नि-प्रवेश करूंगी। नारी का रूप तो शील है, जब वही खंडित हो गया है तो अब जीना व्यर्थ है। अब मैं जीना नहीं चाहती।'

होलिका के इस रौद्र रूप को देखकर और उसके कथन को सुनकर माता-पिता आदि स्वजन उसे समझाने लगे—'मेले में यों ही परस्पर धक्के लगते रहते हैं। ऐसे शील-भंग हुआ नहीं समझा जाता। न ही तुम्हारा कोई दोष है, न ही तुम्हारा शील-भंग हुआ है।' ऐसे समझाकर वे उसे घर लाए। अब वह अधिकतर ढंढ़ा के पास ही रहने लगी। उसी के पास बैठना और सोना चालू हो गया। माता-पिता भी भ्रमवश ढंढ़ा का अत्यधिक उपकार मानने लगे। वे कहने लगे—'ढंढ़ा! तुम तो सती हो और यह जग-जाहिर है। तुमने ही हमारी पुत्री को जीवित रखा है। तुम्हारे इस अप्रतिम उपकार को हम कैसे भूल सकते हैं?' ढंढ़ा पर अति-विश्वास के कारण वे उस पर कभी आशंका करते ही नहीं। होलिका रात्रि में भी वहीं रहती। कामपाल भी अब लगातार उसके पास आने लगा। इस रहस्य को कोई नहीं जान पाया।

यों सुखपूर्वक समय बीतते-बीतते फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा आ गई। कामपाल और होलिका के मन में विचार आया कि हमारी यह बात अब षट्कर्णी हो गई है। यदि ढंढ़ा कभी क्षुब्ध हो गई तो हमारा क्या होगा? किसी दिन माता-पिता के द्वारा यदि इसे पर्याप्त सम्मान न मिला तो संभव है कि रुष्ट होकर यह हमारे प्रेमालाप का पर्दाफाश ही कर दे? अब इसे खत्म कर देना ही उचित है ताकि हम निर्भय हो जाएं और वियोग का खतरा भी मिट जाए। यों गहन चिंतन कर होलिका और कामपाल वहां पहुंचे जहां ढंढ़ा सोई हुई थी। दोनों ने अत्यंत निर्दय बनकर ढंढ़ा के उस झौंपड़नुमा मकान में आग लगा दी। ढंढ़ा तो अग्नि में भस्म हो गई और ये दोनों किसी गुप्त स्थान में चले गए।

प्रातःकाल होते ही होलिका के माता-पिता और गांव के लोगों ने जाना कि होलिका आत्मशुद्धि के लिए जलकर मर गई है। लोग परस्पर कहने लगे—'इस सती को धन्य है जो स्पर्श मात्र से अग्नि-शरण हो गई है। ऐसी सती सचमुच विरल ही मिलती है। वह सतीत्व के बल पर अवश्य ही देवलोक में गई होगी। ऐसी सती के सुयोग से हम गांववासी भी धन्य हो गए हैं।' उसके अग्नि-स्नान की बात दूर-देशांतर तक फैलने लगी। माता-पिता कहने लगे—'यह तो उसी दिन अग्नि-प्रवेश कर रही थी। लोगों के कहने से इतने दिन रह गई। यह घर में दीपक के समान और गांव में अनमोल रत्न जैसी थी।' यों कहते हुए 'अहो सती-अहो सती' बोलकर विलाप करने लगे।

सेठजी के घर में करुण क्रंदन शुरू हो गया। लोग आकर सती के सतीत्व की प्रशंसा के पुल बांधने लगे। चिता को नमस्कार करने लगे और राख लेकर मस्तक पर तिलक करने लगे। इतना ही नहीं, लोग वहां आकर नारियल फोड़ने लगे और उस राख को झपटकर शरीर पर मसलने लगे। लोग कहने लगे—'इस सती की भस्म सर्वरोग-विनाशिनी है। यह इतनी प्रभावक है कि आंख में डालने से आंखों का रोग नष्ट हो जाए और अपुत्रवती स्त्री चिमटी-भर खा ले तो पुत्रवती बन जाए।' इस प्रकार सती की बहुत महिमा बढ़ने लगी। होलिका के नाम पर अनेक लोग व्रत करने लगे। यह भी धारणा फैली कि धान्य के भंडार में सती की राख डाल दी जाए तो धान्य कभी खत्म नहीं होगा।

सती के प्रताप और गौरव का जब राजा और मंत्री को पता चला तो वे भी नमस्कार करने आए। वे भी सती के यश से अभिभूत हो गए। उन्होंने भी सती की राख खजाने में डाली। घोड़ों और हाथियों पर डाली। इससे गांवों और नगरों में सती की कीर्ति फैलती चली गई।

होलिका और कामपाल प्रच्छन्नावस्था में सुखपूर्वक रहने लगे। बहुत वर्ष बीत गए। कामासक्त कामपाल कुछ भी उद्यम नहीं करता था, केवल भोगमय जीवन जीता था। आखिर धन भी समाप्त हो गया। जीवन अभावग्रस्त होने लगा। तब एक दिन वह होलिका से बोला—'धन बिना मनुष्य मृत के समान होता है। पास में धन न हो तो भोग में भी आनंद कहां है? अतः मैं धनार्जन के लिए देशांतर जाना चाहता हूं।' होलिका ने चिंतन किया—अर्थार्जन तो जरूरी है। अर्थ के बिना जीवन कैसे चले? परंतु देशांतर जाने से हम दोनों का चिरकालीन संयोग क्या वियोग में नहीं बदल जाएगा? इस योजना से तो हम दोनों का वियोग हो जाएगा। मुझे अब ऐसा उपाय करना चाहिए कि धन भी प्राप्त हो और पति भी मेरे पास ही रहे। सहजीवी बनकर रहें। होलिका ने क्षिप्र ही योजना बनाकर कहा—'तुम मेरे पिता की दुकान पर जाओ और वहां से कीमती वस्त्र लेकर आओ।' कामपाल सेठ की दुकान पर पहुंचा और अनेक प्रकार के वस्त्रों में से एक वस्त्र पसंद कर बोला—'यह वस्त्र मैं अपनी पत्नी को दिखला कर आता हूं, यदि पसंद नहीं आया तो दूसरा लूंगा।' सेठ ने इसकी स्वीकृति दे दी। पत्नी उस वस्त्र को कब पसंद करने वाली थी? वस्त्र को अदल-बदल कर कामपाल ने चार चक्कर लगाए। आखिर सेठ ने कहा—'तुम्हारी पत्नी को ही यहां ले आओ। इससे मेरी और तुम्हारी दोनों की मेहनत बचेगी।'

सेठ के सुझाव को कामपाल ने स्वीकार कर लिया। इस बार दोनों ही दुकान पर पहुंच गये। सेठ जब उसे वस्त्र दिखाने लगा तो विस्फारित नेत्रों से उसे देखता ही रह गया। उसे देखकर सेठ को बड़ा-भारी विस्मय हुआ। वस्त्र दिखाते समय सेठ बार-बार उसके चेहरे की ओर देखने लगा। कामपाल ने इसका प्रतिकार करते हुए कहा—'ऐसे धनाढ्य और प्रतिष्ठित सेठ होकर आप मेरी पत्नी के मुख की ओर घूरकर क्यों देख रहे हैं? यह बहुत ही शर्म की बात है। मैं इस आचरण को अक्षम्य मानता हूं। ऐसा कदापि नहीं होना चाहिए। क्या पर-स्त्री-दर्शन आपके लिए मान्य है? यदि नहीं है तो ऐसा क्यों कर रहे हैं?' सेठ की आंखों में आंसू छलक पड़े और वह रुआंसा होकर बोला—'बंधुवर! यह मेरी बेटी जैसी ही लगती है। इसमें मुझे बेटी का-सा आभास हो रहा है। इसलिए मेरी दृष्टि बार-बार इस पर टिक रही है। किंतु मेरी पुत्री तो वर्षों पूर्व ही मर गई थी, इसलिए मैं कुछ भी कह पाने में समर्थ नहीं हूं।' इस पर कामपाल बोला—'विश्व में बहुत लोग समान भी होते हैं, अतः भ्रांति होना अस्वाभाविक नहीं है। आप इस बात को जानते ही हैं कि सूर्य-मंदिर में मुझे भी आपकी पुत्री में पत्नी का भ्रम हो गया था और आज मेरी पत्नी में आपको पुत्री का भ्रम हो गया।'

कामपाल आगे बोला—'मेरा अनुभव यह है कि इन दोनों का रूप एक ही है। इसलिए मैं कह सकता हूं कि आपने कोई भूल नहीं की है। यह तो आपका पुत्री-अनुराग जागा है।' कामपाल के ऐसा कहने पर सेठ बोला—'आज से यह मेरी पुत्री के समान ही है—आप ऐसा ही समझ लीजिए। आप अपने-आपको भाग्यशाली समझिए। पुत्री के बिना हम किसे लाड़-प्यार करें?' सेठ के यों कहने पर होलिका बोली—'मेरे पीहर में कोई नहीं है। मैं माता-पिता के स्नेह से वंचित हूं, इसलिए आप मुझे पुत्री के तुल्य ही समझो।' भद्र सेठ ने होलिका के शब्दों को बहुमान दिया और मोह-कर्मवश उन्हें अपने घर ले आया। स्थान, वस्त्र-भोजन आदि की समुचित व्यवस्था कर दी। सेठ ने सेठानी को आश्वस्त करते हुए कहा—'आज से अपने यही पुत्री है और यही दामाद है।' सेठ के इस कथन से सेठानी बहुत खुश हुई। घर में खुशियों का वातावरण बन गया और सब उन्हें बहुत प्रेम से रखने लगे। पुनः उनका जीवन आनंद से सराबोर हो गया और सुखपूर्वक बीतने लगा। किंतु होलिका सेठ की वास्तविक पुत्री है, यह रहस्य जीवनपर्यंत अभेद्य ही बना रहा। यों कहना चाहिए कि होलिका का लोहावरण अटूट और सफल बना रहा। यहां कवि की कल्पना सार्थक होती है कि समुद्र को भुजबल से तैरा जा सकता है, किंतु स्त्री-चरित्र का पार नहीं पाया जा सकता। होलिका ने इस सचाई को प्रमाणित किया है।

किसी कवि ने ठीक ही कहा है—**पाप छिपाया न छिपे, छिपे तो मोटा भाग। दाबी-दूबी न रहे, रुई लपेटी आग।** होलिका का इतना बड़ा पाप कैसे छिपकर रहता? यदि पापी को प्रायश्चित्त न मिले तो 'कर भला, हो भला और कर बुरा, हो बुरा' का सिद्धांत ही व्यर्थ हो जाए। पाप का फल मिलने में देर हो सकती है, अंधेर नहीं और कभी-कभी तो देर भी नहीं होती। यह भी सच है कि पुण्यवान के सुयोग से सबको सुख मिलता है तो पापात्मा के दुर्योग से दुख भी। होलिका ने अपना पाप प्रकट नहीं किया, परंतु वह

कब तक अज्ञात रह सकता था? अनेक दिनों तक पाप का घड़ा न फूटे, इसे ही आश्चर्य समझना चाहिए।

एक बार नगर में महामारी फैली। प्रतिदिन लोग मरने लगे। नगर में घोर चिंता व्याप्त हो गयी और हाहाकार मच गया। राजा और प्रजा—सभी दुखी हो गए। सबमें घबराहट फैल गई। इस विषम परिस्थिति से निबटने के लिए सब लोग मिले और बाकुले लेकर नगर के बाहर आए। बाकुलों को उछालकर सब एक साथ बोले—'हे देव, दानव, यक्ष, राक्षस, भूत, व्यंतर! हम इस महामारी के प्रकोप से अत्यंत दुखी हैं। आप में से जो भी जिम्मेदार हो, कृपया बोलिए और हमारी रक्षा कीजिए। हम आपकी पूजा करेंगे और मान्यता देंगे। पर हमारा रोग अवश्य मिटाइए।' लोगों द्वारा बार-बार इस तरह प्रार्थना करने पर जबरदस्त आकाशवाणी हुई। स्वर फूट पड़े—'जैसा मैं कहूं, वैसा ही तुम करो तो तुम्हारा रोग मिट सकता है।' तब वे एक साथ बोले—'अवश्य करेंगे, अवश्य करेंगे...।'

पुनः उद्घोषणा हुई—'तुम लोग होलिका को जो सती मान रहे हो, उसे आज से असती मानोगे। कामपाल की भर्त्सना करोगे और हल्के शब्दों से उसकी तर्जना करोगे। इतना ही नहीं, तुम लोग माघ शुक्ला पूर्णिमा से फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा तक कामपाल का नग्न रूप बनाकर हर चौक में प्रतिष्ठित करो तथा अभद्र वचनों की बौछार करो। भद्रता और शिष्टता की सारी सीमाएं लांघ दो। भाई-बहिन, पिता-पुत्र, मां-बेटी आदि सर्वजन परस्पर असभ्य वचन बोलो। धूलिका उड़ाओ। खूब हास्य-कुतूहल करो और उन्मत्त जैसा आचरण करो। इसके साथ ही अवज्ञा, आशातना और निंदा का भाव पैदा करने के लिए फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा की रात्रि में होलिका का दहन करो और कामपाल की प्रतिमा का खंडन करो। दूसरे दिन फिर धूलिका उड़ाओ। एक-दूसरे को विद्रूप बनाओ और अश्लीलता का परिचय दो।'

यह सब सुनकर लोग बड़े अचंभित हुए। उनके आश्चर्य की सीमा न रही। वे अपने-आपको ऐसा प्रतिकूल निर्देश सुनने के बाद नियंत्रित न कर सके। आकाशवाणी बंद होने पर सब लोग करबद्ध मुद्रा में बोले—'होलिका इस नगर की महासती है। उसे गंदे शब्द बोलने के लिए आप हमें क्यों कह रहे हैं? आप कौन हैं? हमें आपकी बातों से बड़ा विस्मय हो रहा है। आप हमारी जिज्ञासा को समाहित करें।' पुनः आकाशवाणी हुई और देवी मुखर शब्दों में बोली—'अरे मूढ़चेता लोगो! क्या तुम नहीं जानते कि सेठ-पुत्री होलिका जब बीमार हुई तब ढंढ़ा ने उसका इलाज किया।.... कामपाल से मिलाकर उसे जीवित रखा और उसी के साथ विश्वासघात कर उन दोनों ने उसे जला दिया। आज वे प्रच्छन्न रूप में सेठ के घर में रह रहे हैं। मैं मरकर व्यंतर देवी बनी हूं। घूमती हुई जब मैं इधर से निकली तो नगरी के प्रति मेरे मन में प्रीति का भाव पैदा हुआ।

'तब अवधि ज्ञान के बल पर मैंने अतीत का पूर्ण वृत्तांत जान लिया। उपकार के बदले अपकार करने वाली होलिका पर मेरे मन में अत्यंत रोष आया। जिसका मैंने अपनी बुद्धि-कौशल से मानसिक दुख मिटाया, वियोग को संयोग में बदला और पति से मिलाकर प्राणों की रक्षा की; हाय! उसी ने मुझे जलाकर भस्म कर दिया। कैसी करतूत है और कैसी विडंबना है! मैं उसे कैसे माफ कर दूं? तुम लोग भी मुझसे घृणा करते थे, कुत्सित शब्दों से अनादर करते थे और भिक्षा नहीं देते थे अतः आवेश में आकर मैंने महामारी का यह जबरदस्त प्रकोप किया।'

यह सारा रहस्योद्घाटन सुनकर लोग समाहित हुए और प्रतिवर्ष ढंढ़ा की पूजा करने के लिए संकल्पबद्ध हो गए। इससे वह देवी प्रसन्न हुई तथा महामारी शांत कर फूलों की वर्षा की। इस तरह होली पर्व का प्रवर्तन हुआ। ढंढ़ा को फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को जलाया था अतः प्रतिवर्ष इसी दिन होलिका का दहन किया जाता है। इस पर्व-प्रसंग पर लज्जा-भय और राज-भय का प्रायः लोप-सा हो जाता है। ❖

हमारा आज का यह भड़ैती जीवन स्वयं-स्फूर्ति के अभाव की वजह से है। इसका उपाय यही है कि शिक्षण में स्वयं-स्फूर्ति को स्थान दिया जाना चाहिए। आजकल बालक को जाने बिना, उसकी आंतरिक जरूरतें क्या हैं, इसे तय किए बिना, हम उसके लिए पाठ्यक्रम का निर्धारण करते हैं, समय-चक्र बनाते हैं और तरह-तरह की तर्क-सिद्ध पद्धतियों से उसे अच्छी-से-अच्छी तरह पढ़ाने की खूब मेहनत करते हैं। और इसके बावजूद भी जब उसे समझ में नहीं आता, तो हम अच्छे-बुरे तरीके काम में लाते हैं और शिक्षा के उलझे हुए धागों को और अधिक उलझा डालते हैं।

—गिजुभाई

8 मार्च : विश्व महिला दिवस

नारी : अनुभूतिमय अनमोल रचना

साध्वी शुभप्रभा

औरत की इन्हीं विशेषताओं, क्षमताओं, निपुणताओं, दक्षताओं और नैसर्गिक गुणों का अंकन करते हुए कहा गया हो 'बिन घरनी घर भूत का डेरा'। बहुधा देखा जाता है कि बिना औरत के परिवार विघटित, समाज अवमूल्यित और भविष्य अंधकार में डूब जाता है। इसीलिए उससे यह अपेक्षा की गई है कि वह शिक्षित हो, संस्कारी हो, प्रगतिशील हो तथा व्यक्तित्व-विकास की सभी योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए वह तत्पर हो। ऐसी नारी अपनी धुरी पर खड़ी होकर ही आकाश को देखने और चांद को छूने में सक्षम कहलाती है।

हिंदुस्तान के अनेक प्रांतों में अपनी विजय-पताका फहराते हुए सिकंदर महान जब पंजाब पहुंचा तब पूरे वातावरण में एक अजीब-सा सन्नाटा व्याप्त था। पंजाब की आब को कैसे सुरक्षित रखा जाए? यह प्रश्न हर श्वास में स्पंदित हो रहा था। क्या सीमित साधन-सामग्री से उसका मुकाबला किया जा सकता है? ये चिंता-रेखाएं हर मस्तिष्क पटल पर उभर रही थीं। युद्ध करने से क्या होगा? खून की नदियां बहेंगी और लाखों-लाखों लोग मौत के मुंह में चले जाएंगे। हर घर में आहों की हाटें लगेंगी। निर्धनता, अनाथता, विकलांगता और विवशता द्रौपदी के चीर की तरह हो जाएंगी। अपना कहने वाला भी कोई बचेगा या नहीं, कौन जाने?

चिंतन के वातायन खुले। विचार का एक झोंका यह आया कि क्यों नहीं युद्ध से पूर्व ही सिकंदर की अधीनता स्वीकार करली जाए? इस झोंके ने सबको झकझोरा। पर यह तो पुरुषों के पुरुषत्व को श्लथ कर देने वाला विचार था। इससे तो कर्मजा शक्ति ही भोथरी हो उठती है।

ज्योंही इस चिंतन और निर्णय के स्वर महिलाओं के कर्णकुहरों से टकराए, उनके भीतर भी एक प्रतिक्रियात्मक घर्षण पैदा हुआ। विचार उठा कि यह दासता स्वीकारने का चिंतन उनके जेहन में उतरा कैसे? खैर, कोई बात नहीं। हम अभी जीवित हैं। इस हरितवसना धरती की ओर किसी को आंख भी उठाने नहीं देंगी। बिना प्रतिकार के एक इंच भूमि पर भी क़ब्जा नहीं करने देंगी। कई स्वर एक साथ गूंज उठे—हम शत्रु का मुकाबला करेंगी और नारीसुलभ पुरुषत्व का परिचय देकर शत्रु का सिर झुका लेंगी।

स्वागतम् : सुस्वागतम्

इस आह्वान के साथ सैकड़ों-सैकड़ों कदम एक साथ उठे और चंद क्षणों में ही वे निर्धारित स्थल तक जा पहुंचे। ज्योंही सिकंदर

महान अपनी सेना सहित मुख्य दरवाजे तक पहुंचा, सामने का दृश्य देखकर वह स्तब्ध रह गया। सैकड़ों कंठ वर्धापना गीत में लयलीन थे, हाथों में फूलमालाएं थीं। क्या है यह सब? कौन हैं ये सब? जिज्ञासा के पंखों को समाधान का आकाश मिला—इस अनुगूंज में—आइए, अभ्यागत! स्वागतम्!! पंजाब की वीरांगनाओं द्वारा आपका हार्दिक अभिनंदन! आप पहली बार यहां तशरीफ लाए हैं, बहुत दूर से आए हैं। थके-हारे हैं। इसलिए इस अतिथि-गृह में विश्राम करें।

बिना कुछ सोचे-समझे सिकंदर ने भावभरे आमंत्रण को स्वीकार कर लिया। निर्देशक महिला के संकेतानुसार वह एक प्रशाल-हॉल में प्रविष्ट हुआ। वहां की आवभगत को देखकर वह मंत्रमुग्ध हो गया। वह भूखा था। इसलिए सीधा 'डायनिंग टेबल' के पास ही पहुंचा। बेहतरीन ढंग से सजाए गए सोने के थाले रेशमी वस्त्रों से आच्छादित थे। उसने वसन हटाए। अरे! यह क्या? विस्फारित नेत्रों से वह कभी थालों की ओर देखता और कभी तत्रस्थित महिलाओं की ओर। दो-चार क्षण ही बीते कि उसके चेहरे पर आवेश उभर आया। होंठ फड़फड़ाने लगे। आंखें आरक्त हो उठीं। मेरे साथ ऐसा क्रूर मजाक करने की यह हिम्मत! तभी परिस्थिति की नाजुकता को पहचान एक दबंग महिला आगे आई। साहस के साथ वह बोली—क्या बात है श्रीमन्! खाना शुरू क्यों नहीं कर रहे हैं? सिकंदर ने एक भरपूर तिरछी नजर उस नरनुमा नारी पर डाली। वह कुछ बोले, उससे पूर्व ही महिला कहने लगी—महाशय! आप हीरे और जवाहरात की रोटी खाने के लिए ही तो भारत आए हैं। गेहूं की रोटी तो आपके देश में भी बहुत है। उसे खाने के लिए तो आप इतनी दूर यहां आते नहीं! इतने निरपराध प्राणियों को मारकर खून की नदियां बहाते नहीं! आपकी पसंद को मद्देनजर रखते हुए ही हमने यह भोजन परोसा है। कृपया आप इसे स्वीकार करें।

× × ×

इतिहास बताता है कि सिकंदर महान का मस्तक शर्म से झुक गया। वह पानी-पानी हो गया। बिना कुछ कहे और बिना कुछ किए, सिकंदर ने अपनी सेना को तत्काल वहां से हटने का आदेश दे दिया।

यह प्रसंग आधी दुनिया की क्षमता को उजागर करता है। महिला को 'अबला' कहने वाले एक क्षण रुक कर सोचें और देखें कि उनमें कितनी क्षमता है, कितनी हिम्मत है, कितनी सूझ-बूझ, कितनी वेधकता है, कितनी निर्भीकता है, कितनी बुद्धि है और कितनी वीरोचित ललकार है।

एक नहीं, ऐसे अनेक जीवंत दस्तावेज हैं जो नारी की महनीयता की, कमनीयता की गौरव-गाथाएं सुनाते हैं।

यो मे दर्प व्यपोहति

प्राचीन भारत में स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी। उस समय कुमारी-कन्या उद्घोषणा करती—'यो मां जयति संग्रामे, यो मे दर्प व्यपोहति—जो मुझे संग्राम में हरा दे, मेरा दर्प चूर कर दे, मैं उसी के साथ विवाह करूंगी।' कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि उस एक कन्या को प्राप्त करने के लिए सैकड़ों-सैकड़ों राजे-महाराजे राजदरबार या स्वयंवर-सभा में उपस्थित होते। अपना करतब दिखाते और भाग्य आजमाते। अंत में वरमाला उसी के गले में पड़ती, जो उसके संकल्प को यथार्थ में बदल देने वाला सिद्ध होता।

आधी दुनिया : तीन गुण

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं—'सारा दृश्यमान जगत् ब्रह्म की ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति से परिचालित है। इसी त्रिपुटीकृत शक्ति का संहत रूप है—त्रिपुरा। यानी ब्रह्म के तीन रूपों में प्रकट चेतना। इन तीन शक्तियों का संयुक्त रूप सृष्टि का मूलाधार है—नारी। नारी के तीन गुणात्मक स्वरूप जनमानस को सर्वाधिक आकर्षित किए हुए हैं। यथा—

लक्ष्मी—रूप, सौंदर्य, आर्थिक-स्वनिर्भरता और उदारता की प्रतीक।

दुर्गा—स्व-शासन और शक्ति की प्रतीक।

सरस्वती—विद्या, विनय और सृजन की प्रतीक।

यह सत्य है कि व्यक्ति-विकास, समाज-विकास या कल्याण इन गुणों के समन्वय से ही संभव है। आर्थिक दृष्टि से संपन्न बने बिना कोई भी समाज या राष्ट्र अपनी स्वायत्तता को चिरस्थाई नहीं रख पाता। शक्ति के अभाव में स्व-रक्षा या समाज की बुराइयों का प्रतिकार नहीं हो सकता तथा स्व-विवेक को ताक पर रखने से स्वतंत्रता का उपयोग नहीं हो सकता और न ही वहां सृजन की सितार बज सकती है। यह एक सुखद संयोग ही है कि ये तीनों गुण आधी-दुनिया के हिस्से में आए हैं।

आज तो नारी—जिस पर पुरुष से श्रेष्ठ होने, अधिक समर्थ होने, अधिक सक्षम होने, भौतिक व आंतरिक शक्ति

से अधिक संपन्न होने की वैज्ञानिक मुहर लग चुकी है—अपने बुद्धिबल, धृतिबल, आस्थाबल तथा क्षमता-बल के आधार पर अनेक कामयाबियां हासिल कर चुकी है।

सशक्तता के आधार

अनेक अनुसंधानों एवं खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि स्त्री मानसिक रूप से ही नहीं, शारीरिक दृष्टि से भी अधिक सशक्त है। अन्यथा गर्भधारण व प्रसव-वेदना की कठिन और जटिल प्रक्रिया से गुजरना ही संभव नहीं होता।

शिकागो के डॉ. रूथ पिक ने 'चर्बी का शरीर पर प्रभाव' विषय पर गहन अध्ययन किया तथा मुर्गे-मुर्गियों पर इसका प्रयोग किया। एक कालमान तक दोनों को एक साथ, एक समय, एक जैसा चर्बी-युक्त भोजन दिया गया। कुछ दिनों के पश्चात् मुर्गे की रक्त नलिकाओं में हृदय रोगी जैसा दोष उत्पन्न हो गया। जबकि मुर्गी उस समस्या से सर्वथा मुक्त रही। इसका कारण डॉ. पिक ने बताया कि मादा शरीर में अवस्थित एस्ट्रोजन तत्त्व ने उसकी रक्षा की।

आधुनिक शरीर-विज्ञानी बताते हैं कि नारी में प्रकृति-प्रदत्त तीन मुख्य तत्त्व पाए जाते हैं। वे हैं—

1. प्राणरक्षक एक्स क्रोमोसोम की अधिकता—इससे वह जन्म से पोलियो, वर्णांधता आदि वंशगत रोगों से पीड़ित नहीं होती। स्त्री की गुप्त सुरक्षित शक्ति का मुख्य स्रोत यही है।

2. रक्त में गामा ग्लोबिन तत्त्व की अधिकता—इससे वह लंबी और घातक बीमारियों से बच जाती है।

3. स्त्री-हारमोन एस्ट्रोजन की अधिकता—यह वह शक्तिप्रधान तत्त्व है जिससे एक महिला में 15-16 वर्ष से लेकर 40-45 वर्ष तक गर्भधारण करने की क्षमता रहती है।

मानसिक शक्ति की दृष्टि से देखा जाए तो यहां भी महिलाओं का पलड़ा भारी है। मनःचिकित्सकों के पास आने वाले मानसिक रोगियों एवं पागलखानों में भरती विक्षिप्तों की संख्या का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह निष्कर्ष सामने आया कि वहां रोगी और पागल पुरुषों की संख्या अधिक है।

स्नायुओं की जांच से भी ये तथ्य ज्ञात हुए हैं कि संकटकालीन स्थितियों में पुरुष अधिक उत्तेजित, क्षोभग्रस्त दिखाई दिए जबकि महिलाओं ने स्थिरता और धैर्य का परिचय दिया।

कहां है अबला?

शायद इन्हीं सर्वेक्षणों के आधार पर महात्मा गांधी ने कहा—'स्त्री को अबला कहना उसका अपमान करना है। सबल का अर्थ यदि पशुबल से है, तो वह पुरुष में अधिक है। कामुकता, आक्रामकता, नृशंसता आदि वृत्तियां उसमें अतिमात्रा में पाई जाती हैं। दूसरी ओर औरत कष्ट सहने में, संकट में, धैर्य न खोने के मामले में, नैतिक शक्ति में और बीमारियों से लड़ने में पुरुष से अधिक सबल है। निश्चय ही नारी श्रेष्ठ है।'

मनोविज्ञान की एक प्रोफेसर डियाने हैल्पर्न के अनुसार—लड़कियां लड़कों से कई क्षेत्रों में आगे हैं। जैसे लड़की बचपन में भी लड़के से पहले बोलना शुरू कर देती है। उसकी भाषा समृद्ध होती है। 4, 8, 12 कक्षा की छात्राएं पढ़ने व लिखने में लड़कों से अग्रणी रहती हैं। मौखिक-परीक्षा में भी वे अव्वल स्थान प्राप्त करती हैं। हस्तकौशल—हाथ से किए जाने वाले सूक्ष्म कामों में लड़कियां निपुण होती हैं।

कुछ और विशेषताएं भी हैं—लड़की में। जैसे—

अतिसंवेद्य—उसकी नाक अधिक संवेदनशील होती है। हल्की-सी गंध का भी उसे बोध हो जाता है। श्रवण परीक्षण से भी पता चलता है कि उसकी सुनने की शक्ति का भी जल्दी से ह्रास नहीं होता तथा याददाश्त भी बहुत तेज होती है। कौन-सी वस्तु कब, कहां, क्यों रखी—यह उसके स्मृति प्रकोष्ठ में आरक्षित रहता है।

सामाजिक व्यवहार-कौशल—मुस्काना, खुलना, संकेत से दूसरे की बात को समझ लेना और अपना अभिप्राय समझा देना तथा हाव-भाव व उतार-चढ़ाव से स्थिति को भांप लेना, महिलाओं के लिए सहज है।

नेतृत्व की दृष्टि से महिलाएं अधिक सफल होती देखी गई हैं। क्योंकि वे शक्ति का विकेंद्रीकरण करके अपने मातहतों, अधीनस्थों की भागीदारी और उनमें कार्य के प्रति उत्साह कायम रखने में अधिक सिद्धहस्त हैं। घर-परिवार की सार-संभाल के लिए वह अधिक योग्य मानी गई है। तैराकी में भी लड़कियां अधिक कुशल होती हैं।

कानूनी दृष्टि से भी नारी का स्थान ऊंचा और सम्माननीय माना गया है। कानून के अनुसार एक पति को पत्नी के जीवित रहते उसकी अनुज्ञा के बिना दूसरी शादी करने का हक नहीं है। पैतृक संपत्ति में भी लड़के और

लड़की की समान भागीदारी है। दहेज को कानूनी अपराध माना गया है। स्त्री को अबला, दुर्बल मान उसे अनैतिक कार्यों के लिए बेचना या विवश करना जुर्म है। उसके साथ अन्याय होने पर वह अदालत का दरवाजा खटखटाने की अधिकारी है। निराश्रित स्त्रियां और वृद्धाएं राज्य से संरक्षण प्राप्त कर सकती हैं, आदि।

बिन घरणी के घर

शायद औरत की इन्हीं विशेषताओं, क्षमताओं, निपुणताओं, दक्षताओं और नैसर्गिक गुणों का अंकन करते हुए कहा गया हो 'बिन घरनी घर भूत का डेरा'। बहुधा देखा जाता है कि बिना औरत के परिवार विघटित, समाज अवमूल्यित और भविष्य अंधकार में डूब जाता है। इसीलिए उससे यह अपेक्षा की गई है कि वह शिक्षित हो, संस्कारी हो, प्रगतिशील हो तथा व्यक्तित्व-विकास की सभी योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए वह तत्पर हो। ऐसी नारी अपनी धुरी पर खड़ी होकर ही आकाश को देखने और चांद को छूने में सक्षम कहलाती है।

पश्चिमी विचारक हारग्रेव ने लिखा है—'तारे आकाश की कविता हैं और नारी धरती की। उसमें गुदगुदाने की, जगाने की, चेताने की, समझाने की, खबरदार करने की और कल्पना-शक्ति जगाने की अद्‌भुत क्षमता है। वह पृथ्वी पर सबसे अनुभूतिमय अनमोल रचना है।' आचार्य तुलसी के शब्दों में—'नारी ने अपने अस्तित्व और कर्तृत्व से यह साबित कर दिया है कि वह वस्तु नहीं, किंतु व्यक्तित्व है, जिसे कभी अनदेखा नहीं किया जा सकता।' ❖

यह बहुत स्पष्ट है कि किसी मनुष्य को तब तक निस्स्वार्थ नहीं कहा जा सकता, भले ही वह कभी-कभार निस्स्वार्थ ढंग से व्यवहार करता हो। किसी व्यक्ति को हम दयालु नहीं कह सकते, भले ही वह कभी-कभार किसी गरीब को कुछ सिक्के दान में दे देता हो। जब तक दया उसके पूरे चरित्र और जरूरतमंद के प्रति उसके व्यवहार की एक प्रमुख और सतत विशिष्टता नहीं बनती तब तक उसे ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसी तरह वही मनुष्य निस्स्वार्थ माना जा सकता है, जिसके द्वारा किए गए समस्त कार्य तटस्थता और निस्संगता की भावना से संपन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त निस्स्वार्थता उसके स्वभाव का एक ऐसा स्थाई हिस्सा बन जाना चाहिए कि वह बिना किसी प्रयास के, नैसर्गिक रूप से निस्स्वार्थ ढंग से व्यवहार करे, निस्स्वार्थता को किसी जान-बूझ कर किए गए प्रयत्न का परिणाम नहीं, बल्कि इसके बजाए उसके मस्तिष्क की एक स्थाई अभिव्यक्ति बन जाना चाहिए। आइए, अब देखें कि किसी नैतिक कार्य के प्रति क्या कोई उत्प्रेरक इस लक्ष्य को उपलब्ध कर पाने के लिए पर्याप्त है?

—एम. हिरियन्ना

कहानी

खेल

हृदयेश

खिलौने में एक मोटर थी, एक गुड़िया, एक बाजा और एक किताब। भिखारी बालक ने अति उत्साह और रुचि से एक-एक खिलौने को उठाकर जांचा-परखा और खेल कर देखा। मोटर चलाने पर उसने उस खिलौने की यों आलोचना की कि वह पों-पों नहीं बोलती है, क्योंकि उसने सड़क पर जितनी भी मोटरें चलती देखी थीं, वे सब वैसी आवाज करती थीं। बंगले वाले बालक ने इसके उत्तर में बताया कि उसके पापा के पास जो बड़ी मोटर है वह पों-पों करती है और फिर पूछा कि उसके पापा के पास भी है क्या?

जेठ मास की तपती दोपहरी में पुराने घने पीपल की शीतल छाया ने या तो उस कृशकाय, असमय वृद्ध भिखारी के शरीर में आलस भर दिया था, या सुबह से अब तक बराबर डोलते रहने के कारण बहुत थक गया था, या भीख से कुछ अधिक पा जाने के कारण वह निश्चिंतता से भरा था कि बाहर उभरी एक मोटी जड़ के सहारे पीठ दिए वह गहरी निद्रा में सो गया था और यों दीख रहा था मानो वहां गंदगी का एक ढेर पड़ा हो। इस सोए भिखारी के पास पांच-छह वर्ष का एक बालक, जो इस भिखारी का लड़का ही हो सकता था, बैठा था। उसे नींद न आई थी और वह ऊपर अपने मूंगे जैसे रंग के ओठों के बीच से सफेद महीन दांत चमकाता हुआ काली बुंदकीदार एक पंडुकी को देख रहा था, जो एक निचली शाख पर बैठी अपनी लोचदार गर्दन हर क्षण घुमा रही थी। वह बीच-बीच में पंडुकी की ओर अपनी नन्ही कलाई उठाकर बुलाने की कोशिश भी करता था।

जब पक्षी उड़कर ऊपर घने हरे साए में अदृश्य हो गया, बालक कुछ देर तक विस्मय और कौतूहलभरी दृष्टि से उसे खोजने की असफल चेष्टा करता रहा। फिर वह अपना निचला ओठ मोड़ कर चूसता हुआ अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ। उसे प्यास लग आई थी। सड़क की दूसरी पटरी पर एक सरकारी नल लगा था। बालक ने उठते हुए अपने बापू की ओर देखा। वह अभी गहरी नींद में डूबा हुआ था। वह अपने छोटे-छोटे पैरों से नन्हे-नन्हे डग भरता हुआ कोलतार की सलेटी सड़क को पार कर गया। वह एक ऊंची, पुरानी धारीदार कमीज पहने हुए था, जिसके गले के बटन नदारद थे और उसमें से उसकी मुलायम चिकनी गेहुआं रंग की छाती चमक रही थी। इस कमीज को छोड़कर वह और कुछ नहीं पहने हुए था और उसके नीचे का भाग बिल्कुल नंगा था। पर अपने नंगेपन के लिए उसकी आंखों में कोई

शर्म या हीनभावना नहीं थी। नंगापन बुरा होता है, इस भावना से शायद वह अपरिचित था। वह मंद-मंद मुस्कराता हुआ नल के पास आ गया। नल को खोलना वह जानता था, क्योंकि नल से ही बराबर पानी पीता आ रहा था, और उसने दाएं हाथ से टोंटी के ऊपर के भाग को दबाते हुए बाएं हाथ की हथेली मुंह में लगाकर पानी पीया। जब पानी पी चुका, उसे पानी से खिलवाड़ करने की सूझी। उसने पानी की गिरती धार को तेजी से अंगुली हिलाकर काटना शुरू किया। फिर अपनी पल्लवों जैसी अंजुली में पानी भरकर उसे ऊपर उछाला और जब उसकी कुछ छींटें उसके सिर और जिस्म के ऊपर पड़ीं तो उनके शीतल स्पर्श से वह हंसने लगा। वह कुछ देर तक ऐसा ही खेल करता रहा। सड़क सूनी थी क्योंकि एक तो तपती दोपहरी थी, दूसरे सड़क आम न थी, न इधर कोई बाजार वगैरह ही था। जब इस खेल से उसका जी अघा गया, वह नल के चबूतरे पर खड़ा होकर पीपल के नीचे देखने लगा, जहां उसका बापू अब भी सो रहा था और वह उसे वहां से काफी छोटा दीखता था। फिर वह नजर घुमा-घुमा कर दूसरी दिशाओं में देखने लगा। उसकी दृष्टि जब पश्चिम की ओर गई तो लगा कि दस गज की दूरी पर एक बंगले का ऊपर की ओर उभरा हुआ लोहे का फाटक उसे निमंत्रण दे रहा है। वह चबूतरे से उतर आया और दोनों हाथ हिलाता हुआ मस्ती और निश्चिंतताभरे कदमों से उधर चला गया। फाटक भिड़ा हुआ था और उसने उसका एक पल्ला खोल लिया। उसका इरादा उस पर चढ़कर अंदर-बाहर चक्कर लगाने का था, पर धूप की तपन से सलाखें काफी गरम हो गई थीं और फाटक इस योग्य न रहा था कि उस पर ऐसा खेल खेला जा सकता। तब वह वैसी ही निश्चिंतता और मस्ती के साथ अंदर चला गया। उसकी सुकुमार मुद्रा और चेहरे की सरल-सहज भाव-भंगिमा देखकर कोई भी नहीं कह सकता था कि बंगला उसका जाना हुआ नहीं है और वह यहां कई बार आ नहीं चुका है।

बंगले का रास्ता गेरुआ कंकरीट का था और यह सुर्खी सफेद चूने से पुती जंजीरेदार ईंटों से बंधी थी। इन ईंटों के दोनों ओर क्यारियां बनी थीं और उनमें तरह-तरह के फूल उगे थे। पिछले दिनों जो दो-तीन पानी गिर चुके थे उसका लाभ उठा कर गरमी से झुलसा देने वाले इन दिनों में भी फूल और हरियाली उगा दी गई थी।

वहां खिले फूलों को देखकर, जो कई रंग और आकार के थे, बालक बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसकी बिल्लौरी की तरह साफ आंखों में न जाने कितनी चमक भर गई। वह कुछ देर तक उन्हें मुग्ध दृष्टि से निहारता रहा, फिर दाईं तरफ एक क्यारी में उतर गया, जहां कुछ लतरें फूली खड़ी थी और उनके फूलों पर हौले-हौले अंगुलियां फेरने लगा। कुछ देर बाद उसने एक लतर को हौले-से पकड़कर अपनी ओर मोड़ लिया और उसमें लगे फूलों पर हल्के से अपना नरम सुकुमार चेहरा रख दिया और काफी देर तक आंखें मींचे सुखद अनुभूति से विहंसता हुआ, जिससे उसकी गालों की गुलाइयां उभर गईं, बैठा रहा। फिर वहां से उठकर दूसरे फूलों के पास चला आया और वहां भी करीब-करीब ऐसे या इससे मिलते-जुलते खेल किए। किनारे पर एक ओर लगे गुड़हल के सुर्ख फूलों को देखकर उसके मन में चाह जगी कि वह उन फूलों के पास पहुंचकर उनको तोड़े। पर गुड़हल का पौधा ऊंचा था और उछलने पर भी वह ऊपर फुनगियों पर लगे दुमदार गहरे सुर्ख रंग के फूलों को छू नहीं सकता था। वह सोचने लगा कि वह वहां तक कैसे पहुंच सकता है। पर जब तक वह अपने मस्तिष्क के कोमल तंतुओं पर बल डाले-डाले, बाग के दक्षिणी कोने में कुछ भद-भद की मोहक आवाज हुई और उसे हवा में एक गोल-गोल चीज उछलती लगी। वह वहां से हट कर झूमता हुआ उधर बढ़ गया।

बाग के दक्षिणी कोने पर एक काफी ऊंचे विशाल इमली वृक्ष के नीचे एक उतनी ही उम्र का बालक गेंद उछाल रहा था। यह बालक गोरे रंग का था और सफेद बनियान के नीचे गेलिसदार आसमानी नेकर पहने था। उसके नुकीली ठोड़ी वाले चेहरे पर घुंघराले भूरे बाल बिखरे हुए थे।

भिखारी बालक उसे देखकर यों हंस दिया जैसे उससे उसकी पुरानी पहचान हो और उत्तर में बंगले के मालिक का लड़का भी यों हंस दिया जैसे वह उसी की प्रतीक्षा कर रहा हो। बस, इस हंसने में ही उनका अभिवादन हो गया और औपचारिक प्रारंभिक परिचय भी।

'तुम गेंद खेल रहे हो?'

'हां-आं।'

'गेंद तुम कितनी ऊपर फेंक सकते हो?'

'मैं उन पत्तियों के पास तक फेंक सकता हूं।'—गोरे रंग के बंगले वाले लड़के ने अपनी नन्ही अंगुली से कुछ ऊपर एक झुकी हुई शाख पर लगी झालर जैसी पत्तियों की ओर संकेत किया।

'फेंको।'—भिखारी बालक ने उधर देखते हुए कहा।

बंगले वाले लड़के ने गेंद ऊपर फेंकी और वह सच में वहां तक पहुंच गई जहां उसने इशारा किया था। गेंद ने पत्तियों को छू लिया था और छू जाने से रुकी हुई हवा में खामोश खड़ी वे पत्तियां हिलने लगी थीं, जैसे कांच की लड़ियोंदार झालर धूप में झिलमिलाने लगी हो।

'मैं भी गेंद फेंकूंगा।'

'हां, तुम भी फेंको।'

बंगले वाले लड़के ने भिखारी बालक को गेंद दे दी, भिखारी बालक ने गेंद हाथ में आते ही उसे घुमा-घुमा कर गोर से देखा। फिर मुट्ठी में कसा।

'अरे, यह दब जाती है!'

'हां, यह दब जाती है।'

भिखारी बालक ने उस पर अपनी अंगुलियां और सख्त कीं और गेंद और भी दब गई।

'ऊपर फेंकोगे नहीं?'

भिखारी बालक ने ऊपर देखा, जहां उसे गेंद फेंकना था। वहां पत्तियां अब बहुत धीरे-धीरे हिल रही थीं। उसने उछलते हुए गेंद फेंकी। गेंद पत्तियों से ऊपर तो निकल गई, पर उनसे परे रहने के कारण उसने पत्तियों को छुआ नहीं और जमीन पर गड़ी जंजीरे की एक ईंट की नोक पर ठप्पा खाकर फिर उछल गई और वहां गिरी जहां गुड़हल के दरख्त खड़े थे। वे दोनों उधर ही दौड़ गए, आगे-आगे भिखारी बालक और पीछे-पीछे बंगले वाला बालक। गेंद गुड़हल के थले में जाकर रुक गई थी और भिखारी बालक ने झुकते हुए उसे वहां से उठा ली। इस गुड़हल में भी फूल लगे थे। फूलों को देखकर भिखारी बालक में उन्हें पाने की इच्छा फिर बलवती हो उठी। यह गुड़हल भी ऊंचा था और यद्यपि यहां एक टहनी पर कुछ फूल नीचे की ओर खिले थे, पर उन दोनों बालकों की पहुंच से करीब एक-दो फिट ऊपर तब भी थे।

'मैं यह फूल लूंगा।'—भिखारी बालक ने गेंद बंगले वाले लड़के को पकड़ा दी, जिसने कुछ देर तक उसे हाथ में पकड़े रहने के बाद जेब में ठूंस ली और उसकी जांघ के ऊपर का नेकर वाला भाग बैलून की तरह फूल गया।

भिखारी बालक अब तक चार-पांच बार उछल चुका था। एक बार उसने गुड़हल की एक निचली गांठ पर टांग रख कर उचकना भी चाहा था, पर अपने प्रयास में असफल रहा था। वह तब खड़ा-खड़ा थके चेहरे पर फैली आंखों से फूल की ओर चुपचाप देखने लगा, जिसकी सुनहली कलगीदार दुम नीचे लटकी हुई थी।

'तुम घोड़ा बन जाओ, मैं तुम्हारी पीठ पर खड़ा होकर तोड़ूंगा।'—भिखारी बालक ने फूल तक पहुंचने का उपाय निकाल लिया था। 'बनो घोड़ा।' बंगले वाले बालक को देर लगाते देख कर उसने फिर कहा।

बंगले वाला बालक उस फूल के बिल्कुल नीचे आकर झुकते हुए घोड़ा बन गया। पर जब भिखारी बालक ने पीठ पर टांग रखकर चढ़ना चाहा, वह उधर ही झुक कर टेढ़ा हो गया। भिखारी बालक ने उसे दुबारा और तिबारा घोड़ा बनाया, पर हर बार भार संभाल न सकने के कारण वह टेढ़ा हो जाता था। शायद उसे घोड़ा बन कर बोझ लादने की आदत न थी।

'अच्छा लो, मैं घोड़ा बनता हूं, तुम चढ़ो।' उसे घोड़ा बनने में असफल पाकर उसने स्वयं ही घोड़ा बनना स्वीकार कर लिया। वह पैरों के घुटने और हाथों की कोहनियां मोड़ कर जमाते हुए घोड़ा बन गया। बंगले वाला बालक जब हथेलियों में लग गई मिट्टी झाड़ता हुआ ऊपर चढ़ा तो ऊपर चढ़ने में ही संतुलन खो बैठा और लड़खड़ा कर गिर पड़ा। गिरने से यद्यपि उसके कोई चोट नहीं आई थी, पर वह काफी डर गया।

'चढ़ो', भिखारी बालक ने घोड़ा बने-बने कहा।

'मैं नहीं चढूंगा। गिर पड़ूंगा।'—बंगले वाले बालक की आंखों में भय की छाया घिरी थी।

'चढ़ो। नहीं गिरोगे। मैं हिलूंगा नहीं।'

'नहीं, नहीं चढूंगा। तुम वह दूसरे फूल तोड़ लो।'

भिखारी बालक उठ खड़ा हुआ और उसने उन फूलों की ओर देखा, जिधर इशारा किया गया था। वे छोटे-छोटे वही फूल थे, जिनसे बंगले में घुसते समय वह खेल चुका था। आहा! यह कितना बड़ा और कितना लाल है। इसके लंबी दुम भी है।

'नहीं, मैं इसी फूल को तोड़ूंगा।' भिखारी बालक की मुद्रा दृढ़ निश्चय से गंभीर हो गई थी।

वह पांच-छह बार फिर उछला, पर हर बार फूल कुछ फासले पर रह गया। उसका चेहरा एक तो धूप की तेजी के कारण और दूसरे उछल-कूद के परिश्रम से गुलाबी हो गया था और उसकी महीन धनुषाकार भौंहों के गिर्द मोतियों जैसी पसीने की बूंदें झिलमिलाने लगी थीं।

असफल रहकर बालक फिर खड़ा-खड़ा फूल की ओर फैली आंखों से देखने लगा। फूल कितना प्यारा है। वह पा जाए तो कितना मजा आए। पर कैसे? कुछ फासले पर अहाते की दीवार के पास कुछ गुम्मा ईंटें पड़ी थीं। उन पर दृष्टि जाते ही वह बोला—'हम उन ईंटों को यहां उठा लाएं और उन्हें रखकर चबूतरिया बना लें। चबूतरिया पर चढ़कर फिर मैं फूल तोड़ूंगा।' इतनी कम उम्र में ही दुनिया काफी देख चुकने के कारण उनकी बुद्धि तेज हो चुकी थी।

वह और उसके पीछे बंगले वाला बालक उन ईंटों के पास दौड़ गए और एक-एक कर छह ईंटें रखकर गुड़हल के पेड़ के नीचे उठा लाए। तले-ऊपर दो-दो ईंटों को रखकर भिखारी बालक ने चबूतरिया बना ली और फिर उसके ऊपर चढ़ गया। बंगले वाला बालक नीचे ही खड़ा रहा और उसकी क्रियाएं देखने लगा। पर ऊपर चढ़ जाने पर भी वह सुर्ख फूल पहुंच के कुछ बाहर रहा। तब वह बालक अपनी ऐड़ियों को उठाता हुआ दोनों अंगूठों के बल उचका। पर चार अंगुल का फासला अब भी था। वह खड़ा होकर फैली आंखों से फूल की ओर फिर देखने लगा और सोचने लगा कि अब यह दूरी कैसे कम की जाए। उसके चिकने मासूम चेहरे पर परेशानी की कुछ भद्दी रेखाएं उभर आई थीं। अहाते की दीवार के पास कुछ ईंटें और पड़ी थीं और वह शायद वहां से दो ईंटें और उठा लाता, तभी उसे एक और उपाय सूझ गया। उसने एक निचली टहनी को, जिस तक उसका हाथ पहुंच जाता था, पकड़ कर नीचे झुकाया। उसके झुकने पर फूल वाली टहनी भी नीचे झुक चली, क्योंकि वह उससे जुड़ी थी और तब उसने दूसरा हाथ लपका कर फूल तोड़ लिया। फूल हाथ में आते ही उसने बड़ी जोर से एक किलकारी मारी—आहा हहह—और फिर छलांग मारता हुआ ईंटों से नीचे आ गया और जमीन में फूल को एक हाथ से ऊपर उठाए काफी देर तक उछलता और जोर-जोर से हंसता रहा। उसके गालों की गुलाइयां उभर आई थीं और आंखों ने सितारों की रोशनी छीन ली थी। फिर वह वहीं घास पर पलथी मार कर बैठ गया और फूल की तारीफ करने लगा कि वह कितना सुर्ख है, उसकी पंखुड़ियां कितनी चिकनी और चौड़ी हैं और उसमें बीच में लगी दुम कितनी अजूबा है और दुम के आखिर में सुनहली कलगी कितनी भली दीखती है।

'इसका नाम गुड़हल का फूल है।'—बंगले वाले लड़के ने, जो अपने पापा, मम्मी और माली से फूलों के नाम जान चुका था, उसकी खुशी में अपनी खुशी घोलता हुआ बोला।

'यह गुरुहल का फूल है।'—भिखारी बालक ने जोर से उच्चारा।

'गुरुहल नहीं, गु-ड़-ह-ल।'—बंगले वाले लड़के ने एक-एक अक्षर तोड़ते हुए समझाया और फिर इशारा कर बंगले में लगे उन फूलों के नाम बताने लगा, जो वहां से दिखाई दे रहे थे कि—वह गुलाब है, वह बरजीनिया है, वह सदाबहार है—भिखारी बालक की आंखों में कच्चा अचरज घिर आया कि इन फूलों के भी अलग-अलग नाम होते हैं। उसकी समझ में सब फूलों का नाम बस एक ही है—फूल।

कुछ देर तक वे वहीं बैठे फूलों के संबंध में अजीबो-गरीब बातें करते रहे। साफ नीले आकाश से सूरज अब भी तेज किरणें फेंक रहा था और वे गुड़हल की लंबोतरी छाया में बैठे हंस, मुस्करा और बतिया रहे थे। जब बंगले वाले बालक ने अपने खिलौनों की बात चलाई और बताया कि वह बाहर वहीं इमली के दरख्त के पास रखे हुए हैं, तो वह पीछे-पीछे उठकर वहां चला गया। उसके हाथ में गुड़हल का फूल अब भी थमा था।

खिलौनों में एक मोटर थी, एक गुड़िया, एक बाजा और एक किताब।

भिखारी बालक ने अति उत्साह और रुचि से एक-एक खिलौने को उठाकर जांचा-परखा और खेल कर देखा। मोटर चलाने पर उसने उस खिलौने की यों आलोचना की कि वह पों-पों नहीं बोलती है, क्योंकि उसने सड़क पर जितनी भी मोटरें चलती देखी थीं, वे सब वैसी आवाज करती थीं। बंगले वाले बालक ने इसके उत्तर में बताया कि उसके पापा के पास जो बड़ी मोटर है वह पों-पों करती है और फिर पूछा कि उसके पापा के पास भी है क्या?

पापा का शब्द भिखारी बालक का सुना हुआ था और वह उसका अर्थ समझता था। उसने बड़ी मायूसी से अपनी गर्दन हिला दी। तब बंगले वाला बालक उसे बताने लगा कि वह कैसे बैठकर अपने मम्मी-पापा के साथ बड़ी मोटर पर बाजार जाता है और वह कितनी तेज दौड़ती है।

अब बंगले वाले बालक ने अपनी किताब खोल ली और पहले तो उसकी तस्वीरें भिखारी बालक को दिखाने लगा और फिर पाठ पढ़कर सुनाने लगा—'दिस इज

ए कैट—यह है एक बिल्ली।—दैट इज ए रैट—वह है एक चूहा।'

'मैं भी पढ़ूंगा।'—भिखारी बालक ने उससे किताब ले ली। पर पढ़ने के नाम पर वह उलटे-अटपटे शब्द कहने लगा—'काटू—किटी—सेमी—राटी—।' उनको सुनकर बंगले वाला बालक खुलकर हंसने लगा और फिर वह भी वैसे ही खुलकर हंसने लगा।

उन खिलौनों से भिखारी बालक जल्द ही ऊब गया और खड़ा होकर चारों ओर नजर दौड़ाने लगा कि अब दूसरा कौन-सा खेल खेला जाए? बंगले की चहारदीवारी झिंझरीदार थी और उधर नजर जाते ही वहां चला गया।

'मैं इस पर चढ़ूंगा।'

'नहीं, तुम गिर जाओगे। चोट लग जाएगी, खून निकलेगा।'

'मैं नहीं गिरूंगा। मैं चढ़ूंगा।'

भिखारी बालक कुछ प्रारंभिक कठिनाइयों के बाद झिंझरी की ईंटों को हाथ से पकड़ता और उन पर पैर रखता हुआ ऊपर पहुंच गया। ऊपर पहुंच कर उसने दोनों हाथ छोड़ दिए और तन कर खड़ा होकर आहाहा की। 'आहा! वह कितना बड़ा हो गया है! आहा! उसे बहुत दूर का दिखाई दे रहा है।' उसने अपनी जेब से गुड़हल का फूल निकाल लिया और किसी झंडे की तरह उठाए हुए और आहाहा करता हुआ दूर तक चला गया। फिर नीचे उतर आया।

इसके तुरंत बाद ही वहां बंगले वाले बालक की मम्मी, जो मोटी और गोरी-चिट्टी थी, आ गई। जागने पर कमरे में बच्चे को न पाकर वह उसे बाग में खोजने आई थी। अपने बेटे के पास एक अधनंगे गंदे बच्चे को देखकर उसने डपटते हुए पूछा—'तू कौन है? यहां क्यों आया?'

भिखारी बालक लोगों की नाराजगी का बस एक ही कारण जानता था, जिसके लिए वह और उसका बापू अक्सर दुत्कार दिए जाते थे। वह सीधे-सरल भाव से बोला—'मेम साब, मैं भीख मांगने नहीं आया हूं। मैं खेल खेल रहा था।'

और फिर वह न जाने कैसे समझ गया कि अब खेल नहीं होगा और वह नन्हे-नन्हे डग भरता हुआ वहां से निकल गया और सूनी सड़क पार कर वहीं आ गया जहां उसका बापू एक गंदगी के ढेर की मानिंद अब भी नींद में डूबा हुआ था। वह एक पत्थर पर चढ़कर बैठ गया और जेब से वही गुड़हल का फूल निकाल कर मूंगे जैसे सुर्ख ओठों के बीच से सफेद दांत चमकाता हुआ देखने लगा। ❖

(1960)

घर-परिवार और मित्र-परिजनों के यहां खुशी के अवसरों पर 'जैन भारती' उपहार के रूप में एक वर्ष, तीन वर्ष या दस वर्ष तक भिजवाकर आप आध्यात्मिक-नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान दे सकते हैं। जन्म-दिन का उपहार हो या कोई अन्य अवसर, 'जैन भारती' अनुपम उपहार के रूप में भेंट के लिए हमें लिखें। आपकी ओर से हम यह कार्य करेंगे।

जैन भारती एक संपूर्ण पत्रिका है।
वैचारिक उन्मेष और परिष्कृत रंजन के लिए
जैन भारती पढ़ें—सबको पढ़ाएं।

व्यवस्थापक
जैन भारती
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
तेरापंथ भवन, महावीर चौक
गंगाशहर, बीकानेर 334401

गिरिजाकुमार माथुर की कविताएं

अवस्तु करुणा

जब मेरी आंखों में
    बादल-सूनी बेमानी शामों की
    स्तब्धताएं मंडराती हैं

जब मेरी वाणी में
    बिन बूझी पीड़ा से असहाय
    बच्चों के बेकसूर चेहरे उतरते हैं
जब मेरी बातों में
    अनचाही विवशताएं
    अध-टूटी नींद में घबराती हैं

जब मेरे मौन में भी
    अछूती आत्मा के पारखी की
    गुहार रहती है
    तब तुम जान-बूझकर
    इस सबको अनजाना कर देते हो

तुम्हें
    मेरे मन की समस्त करुणा समर्पित है
    जिससे वह चुक जाए
    और मैं अधिक निस्संग हो जाऊं।

समानांतर सत्य

निर्जन दूरियों के
ठोस दर्पणों में
चलते हुए
सहसा मेरी एक देह
तीन देह हो गई
उगकर एक बिंदु पर
तीन अजनबी साथ चलने लगे
    अलग दिशाओं में
और यह न ज्ञात हुआ
इनमें कौन मेरा है।

निर्वासित आत्मा

महताबियां जल-जल उठती हैं
आस-पास चारों ओर
अनहोनी—
चकाचौंध
    यहां, यहां, यहां
औचक फुलझड़ियां
चकरी-सा नाच रहा
मन
या वातावरण
ओ निर्वासन!
कहां हूं मैं
कहां हूं।

समयातीत क्षण

इस समय कोई भावना नहीं है
एक निरानंद इकहरापन है
बिल्कुल घुला हुआ
न कोई विचार
न उद्वेग
न कोई प्रश्न
न विषय बातचीत का
    यह रात
    रात भी नहीं है
यह हवा में उड़ता कमरा
कमरा नहीं है
    यह परिचित शहर
    कौन-सा है
    पता नहीं—

निःशब्द हंसों-से
धारावाह तैरते हुए लोग
कहां चले जा रहे हैं
दुनिया
अस्पष्ट-पुता
प्रकंपित दृश्य क्यों है
एकटक दृष्टि यह
टिकी है
चकर-मकर
तुम पर
तुम्हारे पार
उस सब पर
जहां-जहां तुम हो
जहां और सब हैं
पर
जहां मैं नहीं हूं। ❖

शीलन

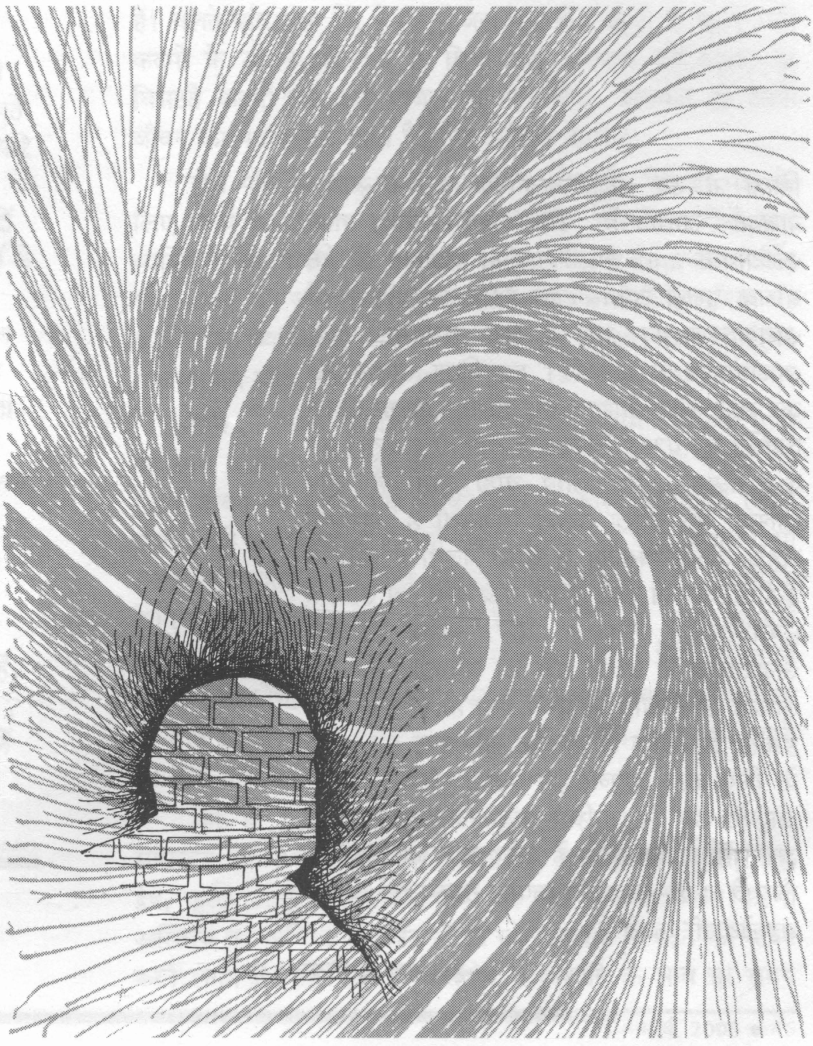

शिक्षा में डर अनुशासन का सफल साधन समझा जाता है और माता-पिता तथा अध्यापक इसे अपनी प्रशंसा समझते हैं कि बालक उनसे डरते-दबते हैं। उनकी नजरों में अनुशासन का अर्थ है भय, दबदबा, जोर, आज्ञापालकता इत्यादि। पर जिस अनुशासन का सार और आधार भय होगा, उसका किसी व्यक्ति पर प्रभाव चिरस्थाई नहीं हो सकता। वह अनुशासन ओछा और बाह्य होता है और बालकों का चरित्र उससे बिगड़ता है, सुधरता नहीं। उनके विकास में बाधा पड़ती है और वे इसी फिकर में रहते हैं कि कब बला टले और वे स्वतंत्रता से मनमानी करें। संभव है, ऐसे अनुशासन से उनके मन को धक्का लगे, उन्हें अपनी परिस्थिति से घृणा पैदा हो जाए और वे हमेशा इस ताक में रहें कि जो-कुछ हमें करने के लिए कहा जाएगा हम उसके एकदम विरुद्ध जाएंगे। डर पर आश्रित अनुशासन बालकों को झूठ बोलना सिखाता है और सजा से बचने के लिए वे तरह-तरह की कपोल-कल्पनाएं अथवा बहानेबाजी करते हैं।

—**हंसराज भाटिया**

कर्मयोग : मेरे हाथ जगन्नाथ

समणी अमितप्रज्ञा

प्रवाह में बहना सरल है, पर इतिहास की रचना प्रवाह के विपरीत बहने वाले ही बनते हैं। क्या व्यक्ति तमस के साथ सर्वत्र बिखरे प्रकाश को नहीं देख सकता? सर्वत्र विद्यमान प्रकाश को देखने के लिए विचारों को मोड़ देने की आवश्यकता है। दुख में से सुख का सेतु खोज लेना और मन में सकारात्मक भाव बनाए रखना ही उत्थान का मार्ग है। इस मार्ग पर चरण-विन्यास हेतु अपने स्वभाव और प्रकृति को जानना तथा चारों ओर व्याप्त वातावरण के प्रति जागरूक रहना जरूरी है। स्वयं को बदलने के लिए स्वयं से ही बातचीत करने की जरूरत है और जरूरत है स्वयं के प्रति ईमानदार रहने की। हम स्वयं से प्रश्न करें—'मैंने क्या किया है और मेरे लिए क्या करना अभीष्ट है? कौनसा कार्य है, जिसे मैं कर सकता हूं, पर कर नहीं रहा? मैं ऐसे कौनसे प्रमाद से ग्रस्त हूं, जिसे मैं छोड़ नहीं पा रहा?'

रास्ता एक ही होता है, चलने के लिए जमीन भी सभी को एक ही मिलती है, पर हां! चलने वाले पांव सदा अपने-अपने होते हैं। कुछ पांव कल्पना के पर लगा उड़ने को बेताब रहते हैं तो कुछ गिरते-उठते-घिसटते कदमों से रास्तों को भी जैसे रुला-से देते हैं। चलते पांव बता देते हैं कि मंजिल क्या है? खुशी से झूमते-गाते कदमों के सामने सफलता के सिवा कोई विकल्प नहीं रहता, तो घिसटते कदमों की कोई मंजिल ही नहीं होती। अंधकार ही उनके जीवन का पर्याय बन जाता है। फिर भविष्य कैसा?

जैसे गति के लिए पांवों का उपयोग होता है, वैसे ही मति के लिए भावों का उपयोग होता है। उन्नति और अवनति—दोनों मार्ग व्यक्ति के सामने होते हैं। जब मति सुमति बनती है तो उन्नति व्यक्ति का स्वभाव बन जाता है और जब मति कुमति बनती है तो दुनिया की कोई शक्ति व्यक्ति को अवनति से बचा नहीं सकती। इस सचाई का साक्षात् जब चाहे, किया जा सकता है।

नाम तो उसका प्रकाश है, पर पुरुषार्थ के कदमों को जब भाग्य का साथ न मिला तो गहन अंधकार ही उसके जीवन का पर्याय बन गया। जीवन का शुक्ल पक्ष उसकी सोच से कोसों दूर भागने लगा। हताशा की इस अवस्था में उसे अपने जीवन का कोई प्रयोजन भी समझ नहीं आता? ऐसी सोच अकेले एक प्रकाश की नहीं, संघर्षों के आगे घुटने टेक देने वाले न जाने ऐसे कितने जन हैं जो सपनों की एक मीठी नींद, सुख की एक रोटी भी नहीं जुटा पाते। ऐसी हालत में मिथ्या दृष्टिकोण, मिथ्या व्यवहार एवं मिथ्या भाव पनपने स्वाभाविक हो जाते हैं और वही जीवन के सहचर बनकर साथ-साथ रहने लगते हैं। ऐसा क्यों है?

मन के विशाल प्रांगण में निषेधात्मक भावों का विशाल साम्राज्य है। घृणा, ईर्ष्या, भय, प्रतिस्पर्धा, मूर्च्छा, अविश्वास, राग, द्वेष, क्रूरता आदि निषेधात्मक भावों की लंबी शृंखला किसी के भी अस्तित्व का अभिन्न अंग बन जीवन को अनुस्रोत में बढ़ने को बाध्य करने लगते हैं। तब चेहरे से असंतोष व अशांति के भाव हर समय

टपकते प्रतीत होते हैं। आंखों में अनवरत दीनता, हीनता और अप्रसन्नता ही प्रकट होती है। निषेधात्मक भावों का यह रचना-संसार आखिर क्यों है?

प्रदीप का नाम और जीवन प्रदीपवत ही नहीं है, दूसरों के जीवन में भी वह प्रदीप की भूमिका बखूबी निभाता है। अपने भीतर के 'प्रदीप' के आधार पर ही वह अपनी अस्मिता और अस्तित्व को बनाए हुए है। तब भी अगर उसकी अच्छाइयों से अच्छी तरह परिचित होते हुए भी जब उसके मित्र उसकी अच्छाइयों का प्रमाण मांगे तो? तब कठघरे में मौन-से खड़े प्रदीप के लिए कहने को कोई शब्द नहीं रहते। विश्वास की दुनिया से अविश्वास का उपहार मिले तो जाने-अजाने भीतर बहुत-कुछ टूट जाता है। सामाजिक संबंधों के स्तर पर सबको राजी रख पाना अतिकल्पना ही होती है, यथार्थ नहीं और प्रदीप भी उसका अपवाद नहीं।

नजर-अंदाज कर दी जाने वाली घटनाएं भी कई बार अवचेतन के किस गहरे स्तर को छू ले, शायद व्यक्ति स्वयं भी नहीं जान पाता, लेकिन शीघ्र ही मिल जाने वाला परिणाम बता देता है कि उसके बीज कहां बोए गए थे। छरहरी स्मिता ससुराल आकर भी खेल-कूद की अपनी प्रवृत्ति से मुंह नहीं मोड़ पाई थी। अपने क्रीड़ा-कौशल पर, अपने शरीर पर उसे गर्व था। सास का भारी-भरकम शरीर, मुश्किल से उठ-बैठ पाने की स्थिति देख-देख एक अहं-भरी मुस्कान उसके होठों पर अनायास थिरक आती। कई बार तो सगर्व सुझाव भी मुखर हो जाता—'अम्माजी! थोड़े आसन किया करो, सुबह घूमने जाया करो।' और कुछ समय बाद ही अचानक स्मिता ने महसूस किया कि लंबे समय तक बैठे रहने की स्थिति में उसके घुटने भी साथ नहीं दे रहे। सीढ़ियां चढ़ते-उतरते उसके घुटने भी कुछ सोचने की बात कहने लगे हैं। कारण की तलाश में चौंकते हुए उसने जाना कि दर्द अनामंत्रित नहीं आया है, भावों ने ही इसे आमंत्रित किया है और अब भावों की शुद्धि से ही इसका उपचार संभव है।

इतिहास गवाह है कि पुत्र-मोह के कारण कैकेयी के भीतर प्रसूत क्षुद्र स्वार्थवृत्ति—'राज्य भरत को मिलना चाहिए'—ने पूरे रघुवंश का चित्र बदल दिया। 'अंधे के पुत्र अंधे'—द्रौपदी द्वारा किया गया यह व्यंग्य महाभारत की रचना कर गया। मनोभूमि में ऐसे क्षुद्र विचारों का बीजारोपण अंतहीन दुश्वारियों की फसल पैदा कर देता है।

प्रवाह में बहना सरल है, पर इतिहास की रचना प्रवाह के विपरीत बहने वाले ही बनते हैं। क्या व्यक्ति तमस के साथ सर्वत्र बिखरे प्रकाश को नहीं देख सकता? सर्वत्र विद्यमान प्रकाश को देखने के लिए विचारों को मोड़ देने की आवश्यकता है। दुख में से सुख का सेतु खोज लेना और मन में सकारात्मक भाव बनाए रखना ही उत्थान का मार्ग है। इस मार्ग पर चरण-विन्यास हेतु अपने स्वभाव और प्रकृति को जानना तथा चारों ओर व्याप्त वातावरण के प्रति जागरूक रहना जरूरी है। स्वयं को बदलने के लिए स्वयं से ही बातचीत करने की जरूरत है और जरूरत है स्वयं के प्रति ईमानदार रहने की। हम स्वयं से प्रश्न करें—'मैंने क्या किया है और मेरे लिए क्या करना अभीष्ट है? कौनसा कार्य है, जिसे मैं कर सकता हूं, पर कर नहीं रहा? मैं ऐसे कौनसे प्रमाद से ग्रस्त हूं, जिसे मैं छोड़ नहीं पा रहा?'

ऐसे प्रश्न व्यक्ति को आत्म-विश्लेषण की भूमिका में ले जाएंगे। तब व्यक्ति अपने-आप से परिचित हो सकेगा। कोई भी व्यक्ति दुनिया से झूठ बोल सकता है, पर स्वयं से नहीं। ऐसे आत्म-विश्लेषण से व्यक्ति में परिवर्तन शुरू हो जाएगा। कालांतर में वह अपने लिए और दूसरों के लिए भी शुभचिंतक की श्रेणी में आता जाएगा। विवेक और सम्यक् सोच से ही निषेधात्मक भावों से त्राण मिल सकता है।

क्राइस्ट से पूछा गया कि ईश्वर के साम्राज्य में प्रवेश का अधिकार किसे है? शिशु को हाथ में लेते हुए उन्होंने कहा—'बच्चे जैसे सरल हृदय वालों को ही ईश्वर के दरबार में प्रवेश पाने का अधिकार है।' सरलहृदयी बने रहने के लिए निश्छलता और विधायक सोच जरूरी है। व्यक्ति का यही प्रयास सामाजिक जीवन को भी स्वस्थता प्रदान कर सकता है।

ऐसे अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं कि विचारों के प्रवाह को विवेकसम्मत सम्यक् मोड़ देने से अप्रत्याशित सुखद परिणाम आए हैं।

भरत क्षेत्र के प्रथम चक्रवर्ती राजा भरत का ऊर्ध्वमुखी चिंतन जब स्वयं से प्रश्न करता है—क्या जड़ वस्तुओं में ही हमारा सौंदर्य निहित है, तो समाधानपरक चिंतन शुरू हो जाता है और पदार्थ-जगत् में आसक्त षट्खंड के अधिपति भरत चक्री को यही चिंतन राग से विराग के सिंहासन पर आरूढ़ कर देता है।

निषेधात्मक विचारों की एक लहर के साथ ही राजर्षि प्रसन्नचंद सातवीं नरक में जाने की तैयारी कर चुके थे, पर सुयोग ऐसा बना कि आत्म-अवबोधक एक वाक्य का निमित्त मिला और भावधारा मुड़ गई। वे तत्काल संभल

गए, नई यात्रा शुरू हो गई। निषेधात्मक भावों का आवरण जब जड़-मूल से ही समाप्त हो गया और शुभ भावधारा प्रवाहित हुई तो केवलज्ञानरूपी सूर्य का उदय हो गया।

गीतांजलि जानती थी कि डाक्टर्स और माता-पिता भले ही उससे लाख छुपाने की कोशिश करें, पर उसके रक्त तक पहुंचे कैंसर के कीटाणु अब उसे छह महीने से ज्यादा जीने की मोहलत नहीं देने वाले, वे हर दिन उसे मृत्यु के समीप और समीपतर ले जा रहे थे। फिर भी आनंद की घड़ियों को बरकरार रखते हुए यह दर्शाती रही कि वह रोग से अनजान है। हंसना और हंसाना ही उसका हर क्षण का उद्देश्य बन गया। फलतः शरीर का रोग कभी उसके मन को रोगी नहीं बना पाया। ऐसी प्रशस्त भावधारा ने उसके जीवन को सुख से सराबोर कर दिया।

पेट में गांठ की शिकायत ने सुधीर को डाक्टर के पास ही नहीं, ऑपरेशन थिएटर तक धकेल दिया था, पर आध्यात्मिक चिकित्सा की शरण ही उसे रास आई। श्रद्धा और स्वतः संसूचन के प्रयोगों से एक चमत्कार घटित हो गया और डाक्टर्स ने पाया कि गांठ गायब है। सुधीर 'ऑपरेशन' की जटिलताओं से भी बचा और भविष्य के लिए भी उसे एक उपयुक्त राह मिल गई।

रोग और स्वास्थ्य दोनों के ही स्रोत हमारे भीतर विद्यमान हैं। हमारे विचारों में ही आत्मसिद्धि और आत्मपतन के बीज हैं। यदि एक बार भी व्यक्ति सकारात्मक चिंतन का हृदय से रसास्वादन कर लेगा तो फिर मनोभूमि में नकारात्मक भावों को पनपने का अवसर ही नहीं मिलेगा।

व्यक्तित्व निर्माण में भावों की भूमिका बहुत शक्तिशाली है। भाव ही जीवन का स्वरूप तय करते हैं। चाकू की तेज धार गला काटकर किसी की हत्या भी कर सकती है और रोगग्रस्त विकृत अंग की शल्य चिकित्सा कर उसके प्राण भी बचा सकती है।

हमें यह सचाई स्वीकार करनी चाहिए कि विश्व की किसी भी महाशक्ति में यह ताकत नहीं कि हमें दुख दे सके, विचलित कर सके। यदि मन में विधायक सोच हो, भावों में करुणा की स्रोतस्विनी हो, वाणी में मिठास और कदमों में लगातार बढ़ते रहने का दृढ़ संकल्प हो तो व्यक्ति नरक को भी स्वर्ग में बदलने की सामर्थ्य रखता है। वेद का कथन है— 'अयं मे हस्तो भगवन्—यह मेरा हाथ भगवान है।' कर्मयोग का यह उद्घोष व्यक्तित्व निर्माण का प्रेरणा-सूत्र है। मनुष्य के दिल और दिमाग में यह स्वस्थ संकल्प जगना चाहिए—

मैं ज्ञानसंपन्न हूं।
मैं शक्तिसंपन्न हूं।
मैं आनंदसंपन्न हूं।

महात्मा बुद्ध ने जिस दृढ़ संकल्प-शक्ति का स्रोत प्रवाहित किया, यदि वह सबके साथ जुड़ जाए तो एक नए युग का सूत्रपात हो सकता है—

ईहासने शुष्यतु मे शरीरं, त्वगस्थि मांसं प्रलयंच यातु।
अप्राप्य बोधि बहुकालदुर्लभा नैवासनात् कायमिदंचलिष्यति।।

अर्थात् बहुत काल से दुर्लभ बनी हुई बोधि जब तक मुझे मिल नहीं जाएगी, मैं इसी आसन में स्थित होता हूं। बोधि प्राप्ति से पहले यह आसन चलित नहीं होगा, भले यह शरीर सूख जाए, त्वचा, अस्थि, मांस समाप्त हो जाए। लेकिन बोधि प्राप्ति से पहले इस आसन से हिलना नहीं है।

'लक्ष्यं वा साधयामि, देहं वा पातयामि'—जैसी दृढ़ता का समावेश जब संकल्प में होता है तो निषेधात्मक भावों को प्रवेश का या ठहरने का कहीं अवकाश ही नहीं मिल सकता। इस अवस्था में ग्रंथि-भेद सरलता से हो सकता है। शास्त्र आह्वान कर रहे हैं—'देवाणुप्पिया! मा पडिवंधं करेहि—हे देवानुप्रिय! शुभ कार्य में विलंब न करो।' गति और मति साथ-साथ चले और सिद्धि फले—यही अपेक्षा है। ❖

प्रेम की सर्वात्म अनुभूति : अध्यात्म की जागृति

इंद्रियां शुद्ध और शांत हो जाती हैं। होली भगवान के लिए आत्मज्ञान और जीव के लिए आत्मनिवेदन है (तत्त्व कथा)। भगवान सृष्टि के प्रत्येक तत्त्व में लीलात्पर हैं। झूलनोत्सव तो अज्ञात भाव से सर्वत्र हो रहा है—पर देखता कौन है? झूलन से ही तो निराकार साकार रूप में विवर्तन और प्रवर्तन करता है। ऋतु की बाह्य उष्णता में साधक अग्निकुंड के प्रकाश में वास्तविक स्वरूप की उपलब्धि करता है—क्योंकि 'देयर इज हीट इवन इन ए पीस आफ

पृष्ठ 26 का शेष

आइस'—बर्फ में भी कहीं-न-कहीं उष्णता अंतर्निहित है।

गहन यात्रा है इस संधान की। पर, है ध्रुव सत्य कि इसी लीला में प्रकृत मंगल विद्यमान है—अव्यक्त-अचिंत्य भगवत-तत्त्व प्रेमरंग में रंगकर आत्मप्रकाश करता है (तत्त्व कथा)। यही व्यष्टि और समष्टि तत्त्व का एकात्म है। वृंदावन इस अप्राकृत प्रेम का दिव्य देश है—स्वरूप-तत्त्व और लीला-तत्त्व का परम सामंजस्य, आधिभौतिक के साथ अध्यात्म का समन्वय। ❖

इन हाथों से ऐसा अकृत्य

साध्वी कांतयशा

महिला ही महिला की विनाशक होती है—यह बात नग्न रूप में सामने आने लगी। गर्भकाल में परीक्षण करवाया जाने लगा और अगर गर्भ में कन्या हो तो अविलंब उसका विनाश होने लगा। एक नहीं, सैकड़ों उदाहरण हैं कि जब महिलाओं ने ही कन्या-भ्रूणहत्या में पहल की। स्त्री ही स्त्री की हत्या करते नहीं हिचकती—ऐसे किस्से सामने आने लगे। अनैतिक आचरणों में भी स्त्री की सहभागिता बढ़ने लगी। स्त्री ही स्त्री का शोषण करती है, उसे पीड़ित करती है, दंडित करती है और मृत्यु के घाट पर भी पहुंचा देती है। आए दिन समाचार पत्रों में पढ़ने एवं सुनने को ऐसे किस्से मिलते हैं।

एक समय था जब सोने की चिड़िया कहलाने वाला भारत संयमित जीवनयापन करता था और उसकी हर क्रिया में संयम परिलक्षित होता था। तब यहां का जन-जीवन पाश्चात्य प्रभावों से प्रभावित नहीं था। कृषि एवं मजदूरी से अपनी आजीविका चलाता था और श्रम के प्रति घोर निष्ठा, श्रद्धा लोगों में विद्यमान थी। आधुनिक संसाधनों की दौड़ तब द्रुतगति से आरंभ नहीं हुई थी। अपने-आप में अलमस्त रहने वाला यहां का हरएक जन सामाजिक संबंधों-रिश्तों को भी ध्यान में रखता था। संयुक्त परिवार में जीने का सहज स्वभाव सबमें विद्यमान था। एक ही परिवार में 30-30 बच्चे साथ-साथ खेलते-खाते थे। जनसंख्या वृद्धि की समस्या ने आज की तरह विकराल रूप धारण नहीं किया था, न रोजगार की समस्या ही थी।

धीरे-धीरे पाश्चात्य देशों में आवागमन प्रारंभ हुआ। पदार्थों का भी आयात-निर्यात होने लगा। समयानुसार द्रुतगति से बढ़ती जनसंख्या वृद्धि ने समस्या का रूप लेना शुरू किया। सरकार ने परिवार नियोजन के लिए अभियान चलाए और कानून बनाया। तीन बच्चों से अधिक संतान हो तो बहुत-सी सरकारी सुविधाओं से हाथ धोने का भय पैदा किया गया। संयुक्त परिवार भी टूटने लगे। मियां-बीवी और दो-तीन बच्चे मस्त हैं। बड़े शहरों में हालत बदलने लगी। बस, इसी में परिवार सीमित होने लगे। पड़ोसी से पहचान तो दूर, पारिवारिक जनों से मिलना-जुलना नहीं रहा। सामाजिक संकीर्णता ने भी चारों तरफ घेरा डाल दिया। महिलाएं चाहने लगीं कि दो लड़के एवं एक लड़की ही हों। श्रमप्रधान जीवन-शैली की तो अंत्येष्टि ही हो गई। तकनीकी और यांत्रिक संसाधनों की ललक जगने लगी। औद्योगिक-व्यावसायिक क्षेत्रों ने भी विस्तार पाया। ज्यों-ज्यों भौतिक संसाधन उपलब्ध हुए, सुख-सुविधा और विलासिता बढ़ने लगी। बीमारियां घर करने लगीं और चिकित्सकों की शरण में जाना शुरू हो गया। घरेलू उपचार निरर्थक माने जाने लगे। सिरदर्द जैसी छोटी-छोटी बीमारी पर भी चिकित्सक का परामर्श लेना शुरू हुआ। महिलाएं जहां गर्भकाल में समस्त गृहकार्य करना सेहत के लिए जरूरी

समझती थीं, वहीं कथित आधुनिक युवतियों के लिए 'बेडरेस्ट' करना जरूरी हो गया।

महिला ही महिला की विनाशक होती है—यह बात नग्न रूप में सामने आने लगी। गर्भकाल में परीक्षण करवाया जाने लगा और अगर गर्भ में कन्या हो तो अविलंब उसका विनाश होने लगा। एक नहीं, सैकड़ों उदाहरण हैं कि जब महिलाओं ने ही कन्या-भ्रूणहत्या में पहल की। स्त्री ही स्त्री की हत्या करते नहीं हिचकती—ऐसे किस्से सामने आने लगे। अनैतिक आचरणों में भी स्त्री की सहभागिता बढ़ने लगी। स्त्री ही स्त्री का शोषण करती है, उसे पीड़ित करती है, दंडित करती है और मृत्यु के घाट पर भी पहुंचा देती है। आए दिन समाचार पत्रों में पढ़ने एवं सुनने को ऐसे किस्से मिलते हैं।

सरिता के पांच माह का गर्भ था। उसने परीक्षण करवाया। सरकार द्वारा परीक्षण का निषेध होते हुए भी धन के लालची चिकित्सकों की कमी नहीं। मुंहमांगा धन देकर परीक्षण करवाए जाते हैं और गर्भ में कन्या हो तो अविलंब विनाश करने का निर्देश भी दे दिया जाता है। प्रारंभिक अवस्था में तो एक गोली लेने मात्र से भ्रूण का विनाश हो जाता है। गर्भपात के बाद यह सोचा जाता है कि अब अमन-चैन से जिंदगी बिताएंगे। दांपत्य जीवन में सुख, शांति एवं समृद्धि की अभिवृद्धि हो—ऐसी दिली तमन्ना कन्या-भ्रूणहत्या के साथ घर करती जा रही है, लेकिन वास्तविकता कुछ और ही होती है। ऐसी महिलाएं शांति से थोड़ा समय ही व्यतीत कर पाती हैं। अंततः वे अनमनी रहने लगती हैं। उदासी एवं निराशा रग-रग में व्याप्त हो जाती है। कुछ भी काम करने का उत्साह नहीं रहता। पूरा-का-पूरा दिन निराशा-हताशा में गुजरता है। कभी-कभी तो संबंधों का भान तक नहीं रहता कि कौन ससुर, कौन सास और कौन पति? सब-कुछ विस्मृति के गर्त में चला जाता है। बुत की भांति अडोल, अविचल-सी रहने लगती हैं। इस स्थिति में फिर चिकित्सकों की शरण ली जाती है, पर सुधार की संभावना बहुत कम रह पाती है। अब क्या करें? कैसे स्वस्थ हो? एकमात्र यही चिंता सबको दहने लगती है। अच्छी तरह से गृहस्थी का संचालन करने वाली महिला निस्सहाय हो जाए तो यह किसे अच्छा लगेगा? कहीं पर भी अपनी बात बताने का साहस नहीं बचता। कई बार ऐसी पीड़िताएं तांत्रिकों, जादू-टोने और मंत्र-तंत्र के चक्कर में भी पड़ जाती हैं, पर सारे प्रयास निष्फल ही रहते हैं। देवताओं की मनौती भी की जाती है, पर देव भी कब सहायता करने वाले! कहीं भी सुख-शांति नहीं मिलती।

कोई भी दुरवस्था अकारण ही नहीं होती। जो पाप किया गया, उसका नतीजा भुगतना ही पड़ता है। अंततोगत्वा उसका समाधान एक ही होता है कि इस पश्चात्ताप से मुक्त होने के लिए अपनी आत्मशक्ति को पुनर्जाग्रत करें। यह कैसे संभव हो सकता है? आत्मशक्ति को फिर से जाग्रत करने का एक उपाय तो यही है कि भविष्य में कभी ऐसा न करने के लिए संकल्पबद्ध हुआ जाए और ऐसी प्रवृत्ति को समूल समाप्त करने के लिए अपनी शक्ति और क्षमता का उपयोग किया जाए। पाप से मुक्ति का दूसरा उपाय है प्रायश्चित्त। कन्या-भ्रूण को समाप्त करने की दुष्प्रवृत्ति को समाप्त करने में महिलाओं की भूमिका सर्वाधिक प्रभावी हो सकती है। जो महिला दुर्भाग्य से कन्या-भ्रूण का पता लगा गर्भपात करा बैठी, वह उसके दुष्परिणामों से भी वाकिफ होती है और यदि उस कटु यथार्थ को अन्य महिलाओं के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए तो कन्या-भ्रूणहत्या के प्रतिकार में अनुकूल वातावरण निर्मित हो सकता है।

पांच माह की प्रसववती जिस सरिता का इस आलेख में प्रसंगवश जिक्र किया गया, इसी उदाहरण को सामने रख, इस दिशा में चिंतन किया जाना चाहिए। जिस भ्रूण का गर्भपात हुआ, वह तो निर्दोष ही था और यदि पारंपरिक आस्थाओं को मानें तो यह भी माना जा सकता है कि वह भ्रूण मरकर पुनः देवयोनि में उत्पन्न हुआ। अपने ज्ञानबल से उसने जाना कि अमुक महिला (सरिता) ही मेरी मां थी, मुझे वहां जाना चाहिए और मातृऋण से उऋण होने के लिए एक बोधपाठ सिखाना चाहिए। फिर से देवयोनि में उत्पन्न वह भ्रूण अविलंब उस महिला के सन्निकट पहुंचा। महिला से बोला—'आपने मुझे पांच महीने अपने पेट में धारण किया था, अतः आप मेरी मां होती हैं। मैंने ऐसा कौन-सा अकृत्य आपके साथ किया कि जिसका दंड मुझे भुगतना पड़ा, पर नियति को जो मान्य होता है उसे कौन टाल सकता है? होनी को टाला भी कैसे जा सकता है? मैं तो मातृऋण से उऋण होने के लिए आपके पास आया हूं और आपको सचेष्ट करता हूं कि भविष्य में ऐसा कृत्य आप अपने हाथों से संपादित न करें और महिला जाति को ऐसा अकृत्य न करने की प्रेरणा दें। आप नारी मात्र को

इसकी अवगति दें ताकि हमारा भविष्य सुगम बन सके। समता, ममता एवं क्षमता की प्रतिमूर्ति मां ही यदि हिंसा का द्वार उद्घाटित करती रहेगी तो सृष्टि का क्रम कैसे चल पाएगा? 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' को न केवल जानें, बल्कि अपने आचरण के बल पर उसे यथार्थ में उतारने का प्रयास करें।

अगर इस समाज को अमन-चैन की जिंदगी जीना है, स्वस्थ, आत्मस्थ और आनंद के सागर में डुबकियां लगानी है तो कई सरिताओं को संकल्पबद्ध होना होगा कि ऐसे घृणित कार्य से समाज को वे मुक्त करें। नारी जाति में ही ऐसा संकल्प करवाने का अभियान शुरू करना होगा।

अपने पापों का प्रायश्चित्त करके सरिता (कल्पित नाम) आत्मस्थ बनी। कन्या-भ्रूण-विनाश के विरुद्ध उसका अभियान आज तक जारी है। किस जन्म के किए कर्म का परिपाक व्यक्ति को कैसे और कब भुगतना पड़ता है, हम इसका स्पष्ट निदर्शन जानें और प्रतिपल 'समयं गोयम मा पमायए' के सूत्र को अंगीकार कर जागरूकतापूर्वक जीवनयापन करें—यही काम्य है। ❖

रचनाकारों से

जैन भारती में नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के विचार-प्रधान व विश्लेषणात्मक लेखों और मौलिक कहानियों-कविताओं का स्वागत है, प्रकाशित-प्रसारित रचनाओं का उपयोग करना संभव नहीं होगा

अपनी रचनाएं कागज के एक तरफ साफ-साफ टाइप की हुई भेजें
हाथ से लिखी हुई रचनाएं भी कागज के एक ओर ही लिखी हों

लिखावट साफ-सुथरी, बिना काट-छांट के होनी चाहिए
कागज के एक ओर पर्याप्त हाशिया अवश्य छोड़ें

जीवन परिचय, व्यक्तित्व व कृतित्व पर लिखे गए लेख सीधे नहीं भेजें
ऐसे लेख हमारे मांगने पर ही लिखें व भेजें तो बेहतर होगा

सम-सामयिक विषयों पर विचारात्मक टिप्पणियों का भी हम स्वागत करेंगे
ऐसे लेख भी नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के हों और विश्लेषणात्मक हों तो बेहतर होगा

महिलाओं, किशोरों और बाल-मन पर
आधारित रचनाओं का हम स्वागत करेंगे

आप चाहें तो कहानी-
कविता भी भेज सकते हैं

अप्रकाशित रचनाएं लौटाना अथवा इस बारे में
पत्र-व्यवहार करना संभव नहीं होगा

बेहतर हो, भेजी गई रचना की एक प्रति
रचनाकार पहले से ही अपने पास रखें

शिक्षा जगत और स्त्री का स्वरूप

इला र. भट्ट

मौजूदा समय में स्त्रियां जिन अनेक व्यवसायों में सक्रिय हैं, उनका यथार्थ दर्शन तो होना ही चाहिए। साथ ही, भविष्य में देश का तेजी से विकास हो, इसके लिए भी स्त्रियों का नए व्यवसायों से जुड़ना आवश्यक है। स्त्री को वकील, आर्किटेक्ट, कंडक्टर, ड्राइवर, पोस्टमेन (वुमन), प्लंबर, वायरमैन (वुमन), इलेक्ट्रिशियन, मैनेजर, मिनिस्टर के रूप में दिखाकर किशोरियों को प्रेरणा का पाथेय थमाना आवश्यक है। किशोर लड़के भी ऐसे सकारात्मक (पॉजिटिव) स्वरूपों को बचपन से देखेंगे तो बड़े होकर महिला साथियों या महिला अधिकारियों के साथ काम करते हुए अकुलाएंगे नहीं। इसी प्रकार पुरुषों को भी घर के काम में लगा हुआ, कपड़े सुखाते हुए, बच्चे को गोदी लेते, प्रेस करते, बीमार को दवाई आदि देते हुए दिखाने में कतई कोई बुराई नहीं है। बेटियों को पिता के साथ आर्थिक गतिविधियां करते हुए, बेटे को मां के घरेलू इस्तेमाल के साधनों को सुधारते हुए दिखाया जाना चाहिए। लड़का-लड़की दोनों को बैट-बॉल, टेनिस, गुल्ली-डंडा, कबड्डी खेलते, घुड़सवारी या 'स्वीमिंग' करते दिखाना चाहिए।

स्कूल में दाखिला लेते ही बच्चों के हाथों में पढ़ने की किताबें थमा दी जाती हैं। साल-दर-साल बच्चे नई-नई किताबें पढ़ते हैं, तोतारटंत करते हैं। उसी में से राष्ट्र के भावी निर्माता अपने जाने-अनजाने प्रेरणा भी प्राप्त करते हैं, मनोमूर्तियां बनाते हैं और मानव-जीवन के तत्त्वज्ञान की प्राप्ति करते हैं। बच्चों का स्वरूप भी उसी से गढ़ा जाता है। समाज-जीवन में किसके क्या-क्या दायित्व हैं, किसके साथ कैसा व्यवहार हो सकता है—इसका 'मॉडल' भी वे पाठ्य-पुस्तकों के पाठों तथा चित्रों से ही प्राप्त करते हैं।

अंग्रेजी पाठ्य-पुस्तकों में स्त्री का स्वरूप किस तरह आलेखित है—इसका एक अध्ययन किया गया। पाठ्य-पुस्तकों में क्या देखा? बताया गया कि अवकाश में रहने वाले लोग हमारी पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से अगर हमारे समाज के बारे में कोई राय कायम करना चाहें, तो निश्चय ही यह अनुमान लगाएंगे कि पृथ्वी नामक ग्रह पर केवल पुरुष ही बसते हैं। स्त्रियों की तो इक्का-दुक्का बहुत थोड़ी-सी आबादी देखने को मिलेगी।

पाठ्य-पुस्तकों के 300 पाठों के अध्ययन से पता चला कि—

1. जिनके केंद्र में पुरुष हैं—ऐसी 181 कहानियां हैं। जिनके केंद्र में स्त्री हैं—ऐसी 9 कहानियां हैं।
2. पुरुष के 263 चित्र हैं, स्त्री के मात्र 75 चित्र हैं।
3. दोनों के साथ हों—ऐसे 88 चित्र हैं और उनमें भी पुरुष प्रमुख हैं।
4. जीवन-चरित्र के पाठों में 78 चरित्र पुरुषों के हैं, 3 चरित्र स्त्रियों के हैं।
5. हर पाठ स्त्री की निष्क्रियता की ओर ध्यान खींचता है।
6. 199 कामों में से 124 काम आर्थिक-सामाजिक महत्त्व के काम हैं और इनमें से 113 काम पुरुष करते हैं, जबकि मात्र 11 काम स्त्रियां करती हैं। इन पाठों में पुरुषों को वैविध्यपूर्ण काम करते हुए दिखाया गया है।

दूसरी ओर स्त्रियों को किस किस्म के काम करते दिखाया है? जैसे—नर्स, अध्यापिका, रानी, राजकुमारी, सर्कस की नटी, नौकरानी, डायन आदि। स्त्रियों के इस किस्म के व्यवसायों को किताबों में देखकर किसी भी छात्रा को प्रेरणा की क्या सामग्री मिलेगी—यह एक विचारणीय मुद्दा है।

7. पचास प्रतिशत स्त्री-पात्रों को तो नाम तक नहीं दिए गए हैं। उन्हें सिर्फ मां, बेटी, बहन, दादी, नौकरानी आदि संबंधों से ही परचाया गया है।
8. मां के रूप में मां को अधिक सक्रिय नहीं दिखाया गया है।
9. उड़न-तश्तरी, विज्ञान, मानव-शरीर, समुद्री यात्रा के पाठों में तो स्त्री का कहीं नामो-निशान तक नहीं है, जैसे कि स्त्रियों में बौद्धिक जिज्ञासा होती ही न हो। जिन लड़कियों में जिज्ञासा जागती है, उसे दबा देने के लिए ये पाठ्य-पुस्तकें ही जिम्मेवार हैं। जैसे कहा भी गया है कि तुम्हारा काम नर्स, अध्यापिका, नौकरानी आदि का है। विज्ञान तो तुम्हारा क्षेत्र है ही नहीं।
10. पोर्शिया तथा झांसी की रानी अपनी वीरता के काम पुरुषों के भेष में करती हैं, ऐसे ही चित्रों की प्रस्तुति है। झांसी की रानी के पाठ में लिखा है—'ब्रॉट अप बॉय हर फादर लाइक अ बॉय।' जैसे कि लालन-पालन में मां की कोई भूमिका हो ही नहीं। जैसे कि लड़का ही वीरता का प्रदर्शन कर सकता हो। रानी के खिलाफ लड़ने वाले ब्रिटिश आर्मी कमांडेंट अपनी रपट में लिखते हैं—'द बेस्ट मेन ऑन द साइट ऑफ द एनिमी वॉज द रानी ऑफ झांसी।'

पाठ्य-पुस्तकों में निहित इस प्रकार के शब्द-प्रयोग तथा चित्र बच्चों के मन में स्त्रियों की ऐसी अवास्तविक तथा अप्रस्तुत छवि उकेरते हैं कि उसके परिणाम-स्वरूप राष्ट्र के महान ध्येय उनसे हासिल नहीं हो पाते हैं। बचपन से ही ऐसे संस्कार दृढ़तापूर्वक बैठ जाते हैं कि बड़ी होकर लड़की घर का काम करेगी, बच्चे पालेगी और बहुत ही हो गया तो टाइपिस्ट, नर्स, अध्यापिका या डॉक्टर बनेगी। इस प्रकार खड़ी होने वाली छवि स्त्रियों के मन में उलझन तथा दुविधा पैदा करती है। परिवार चलाने की जिम्मेदारी आ पड़ने पर गैर-पारंपरिक व्यवसायों के क्षेत्रों में जाने की उनकी हिम्मत नहीं होती और वे बेहद लाचारी की स्थिति में पड़ जाती हैं।

ये तो हुई अंग्रेजी पाठ्य-पुस्तकों में दर्शाए गए स्त्री के स्वरूप की बात। अब हिंदी पाठ्य-पुस्तकों का जो अध्ययन हुआ है, उसे भी देखा जाए—

भारत में पाठ्य-पुस्तकों की प्रमुख समस्या स्त्री-पुरुष अलगाववाद (सेक्सीज्म) की है। नवीं से लगाकर ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ने वाले तेरह लाख (अब यह संख्या भी बढ़ गई है) विद्यार्थी जिनका अध्ययन करते हैं—हिंदी की ऐसी 41 पाठ्य-पुस्तकों में स्त्रियों को दबा हुआ, अनपढ़, दुर्बल तथा मूर्ख-सा दिखाया गया है। दूसरी ओर पुरुषों को स्वतंत्र वर्चस्व वाला तथा स्त्रियों से बढ़कर दिखाया गया है। हरियाणा, पंजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थान तथा दिल्ली में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में पुरुषों का आधिपत्य दिखाया गया है। उसके कुछेक नमूने इस प्रकार हैं—

- कहानियों में 75 प्रतिशत पुरुष पात्र ऐसे हैं जिनका आधिपत्य है।
- 45 जीवन-चरित्र पुरुषों के हैं, स्त्रियों के कुल सात जीवन-चरित्र हैं।
- 100 के करीब स्त्री-चरित्र घर के काम को छोड़कर कोई और काम नहीं करते हैं। कई पाठों में पुरुष वर्ग स्त्रियों के लिए आदत से खराब शब्दों का इस्तेमाल करता है और उन्हें बुरी तरह से पीटता है।
- पुस्तकें मानो पुरुष पाठकों को ही संबोधित हों, इस तरह से जब-जब भी मानव-जाति का उल्लेख किया जाता है, तब-तब पुरुषवाचक नामों और सर्वनामों का ही उपयोग किया जाता है।
- उल्लिखित 465 व्यवसायों में से 344 व्यवसायों में स्त्रियों का तो कहीं नामो-निशान भी नहीं है। केवल 10 व्यवसायों में ही स्त्रियों को स्वतंत्र रूप से संचालन करते हुए दिखाया गया है।
- कई-सारे पाठों में पुरुष लोग यश तथा संपदा प्राप्ति के लिए बाहर जाते हैं। स्त्रियां घर में रहकर कपड़े धोती हैं, घर में साफ-सफाई करती हैं। तमाम तरह के प्रतिष्ठित व्यवसाय पुरुष करते हैं। घर से बाहर तथा घर में होने वाली तरह-तरह की गतिविधियों में निर्माणकर्ता पुरुष ही होते हैं। स्त्रियों के व्यवसायों में गृहिणी, नौकरानी तथा वेश्या का प्रमुख रूप से उल्लेख है।
- बेटी के जन्म पर अफसोस व्यक्त करने वाले पिताओं का उल्लेख है। बेटों की प्रशंसा करते हैं। विवाहित स्त्री

अपने पति की सेवा में ही जीवन बिताती है। उसकी मृत्यु हो जाने पर उसके साथ सती (अनेक उद्धरण) होती है। पाठ्य-पुस्तकें सती तथा जौहर की प्रथा को आदर्श के रूप में प्रस्तुत करती रही हैं।

इन पुस्तकों को पढ़ने वाले किशोर लड़के-लड़कियां स्वाभाविक ही मान लेंगे कि स्त्री-वर्ग निश्चय ही पुरुष-वर्ग की तुलना में निम्न स्तर का है। किशोर खुद अपनी किशोरी बहन से अपेक्षया उच्च स्तरीय है, मेरे पिता मेरी मां की तुलना में बढ़कर हैं, मेरी भावी पत्नी मुझसे निचले स्तर की ही होगी। समूची स्त्री-जाति को कमतर मानकर मैं (पुरुष-वर्ग) उनके साथ व्यवहार कर सकता हूं। एक किशोरी को आगे बढ़ने के उत्साह, आकांक्षा पर कैसा मानसिक आघात होगा, इसकी चिंता न तो पाठ्य-पुस्तकों के लेखकों ने की है, न उन्हें पढ़ाने-योग्य मानकर मंजूरी देने वालों ने की है, न ही अध्यापकों ने की है।

हकीकत में तो 1965 में प्रकाशित 'एज्यूकेशन कमीशन' की रपट ने पाठ्य-पुस्तकों से स्त्री-पुरुष के अलगाववादी रवैये (सेक्सीज्म) को दूर करने की घोषणा की है। मगर 1979 की हिंदी पाठ्य-पुस्तकों के विश्लेषण को देखकर स्त्रियों के भविष्य को लेकर निश्चय ही मन चिंता से भर उठता है।

बाल-कथाएं

बड़ौदा विद्यापीठ के एक समूह ने 50 आधुनिक बाल-कथाओं में स्त्रियों के निरूपण का अध्ययन किया है। उसका निष्कर्ष देखने पर चिंता दूर होने की कोई संभावना नजर नहीं आती। दिए जाने वाले उदाहरणों में से 102 पुरुषों के हैं, जबकि 21 स्त्रियों के हैं। दिए गए चित्रों में से 29 पुरुषों के और 14 स्त्रियों के हैं। निष्कर्ष में यह भी बताया गया है कि बाल-कथाएं पढ़ने के बाद निम्नलिखित प्रभाव पड़ता है : स्त्री शिक्षा नहीं देती, स्त्री बदलाव नहीं लाती, स्त्री किसी किस्म का जोखिम नहीं उठाती। स्त्री घर का काम करती है, स्त्री को घर का काम करने में पुरुषों की सहायता लेनी पड़ती है। पुरुष स्वतंत्र रूप से काम करता है, हर काम में निर्णयकर्ता पुरुष होता है।

सकारात्मक स्वरूप

यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि पाठ्य-क्रमों में आधुनिक समाज के अनुरूप स्त्री-रूपों को रखा जाना चाहिए, पिछले स्वरूपों को सुधारना ही पर्याप्त नहीं है। इसके अलावा सकारात्मक (पॉजिटिव) रूपों को रखकर प्रजातंत्र, समानता तथा सामाजिक न्याय पर रचे गए समाज को गढ़ने में उपकारक भूमिका निभाने वाले मूल्यों को विकसित करना आवश्यक है। पाठ्य-पुस्तकों में स्त्री-पुरुष दोनों के उदाहरण, कहानियां, चित्र आदि समान संख्या में प्रस्तुत किए जाने चाहिएं। महत्त्व की जिम्मेवारियां दोनों को बारी-बारी से सौंपी जानी चाहिएं। दोनों को ही तरह-तरह की गतिविधियों में लगा हुआ दिखाया जाना चाहिए। स्त्रियां भी खेल-कूद, घर का काम, साहस, आर्थिक-सामाजिक कामकाज करती हैं। स्त्रियों के व्यवसायों का वैविध्य बढ़ना चाहिए।

मौजूदा समय में स्त्रियां जिन अनेक व्यवसायों में सक्रिय हैं, उनका यथार्थ दर्शन तो होना ही चाहिए। साथ ही, भविष्य में देश का तेजी से विकास हो, इसके लिए भी स्त्रियों का नए व्यवसायों से जुड़ना आवश्यक है। स्त्री को वकील, आर्किटेक्ट, कंडक्टर, ड्राइवर, पोस्टमेन (वुमन), प्लंबर, वायरमैन (वुमन), इलेक्ट्रिशियन, मैनेजर, मिनिस्टर के रूप में दिखाकर किशोरियों को प्रेरणा का पाथेय थमाना आवश्यक है। किशोर लड़के भी ऐसे सकारात्मक (पॉजिटिव) स्वरूपों को बचपन से देखेंगे तो बड़े होकर महिला साथियों या महिला अधिकारियों के साथ काम करते हुए अकुलाएंगे नहीं। इसी प्रकार पुरुषों को भी घर के काम में लगा हुआ, कपड़े सुखाते हुए, बच्चे को गोदी लेते, प्रेस करते, बीमार को दवाई आदि देते हुए दिखाने में कतई कोई बुराई नहीं है। बेटियों को पिता के साथ आर्थिक गतिविधियां करते हुए, बेटे को मां के घरेलू इस्तेमाल के साधनों को सुधारते हुए दिखाया जाना चाहिए। लड़का-लड़की दोनों को बैट-बॉल, टेनिस, गुल्ली-डंडा, कबड्डी खेलते, घुड़सवारी या 'स्वीमिंग' करते दिखाना चाहिए।

खिलौनों के प्रति भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। बेटियों के हाथ में हमेशा गुड़िया का होना क्यों जरूरी है? वह भी तो मोटर या विमान से खेल सकती है। हमारी बेटियां, माताएं तो बनेंगी ही, मगर भारत के नव-निर्माण में क्या हमें अपनी बेटियों को अन्य महत्त्वपूर्ण कर्तव्यों के लिए तैयार नहीं करना है? अगर करना है, तो फिर ऐसा भेद-भाव नुकसानदेह है। ❖

बालकथा

अंकित की खुशी

हरदर्शन सहगल

चाचाजी ने अंकित के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए बताया—'मारना तो दूर, हां! हम पशु-पक्षियों को जरा भी तंग तक नहीं करते। तुम जानते हो न, पेड़-पौधे और पशु-पक्षी हमारे राष्ट्र की बहुत बड़ी संपदा हैं और शोभा भी। अनाप-शनाप तरीके से पेड़-पौधों को काटने से वायुमंडल दूषित होता है। ऑक्सीजन की कमी से मनुष्य का स्वास्थ्य खराब होता है। रेगिस्तान का विस्तार भी इसी तरह होता है, जो सबके लिए हानिकारक है। वर्षा नहीं होती और अकाल पड़ते हैं। इसी प्रकार जानवरों और पक्षियों के कारण ही तो हमारा देश इतना सुंदर लगता है। इसीलिए कहा गया है—इन्हें मारना पाप है।'

अंकित हमेशा अपने चाचाजी के आने की प्रतीक्षा करता रहता है। वह यह भी जानता है कि रोज-रोज चाचाजी इतनी दूर से नहीं आ सकते।

अंकित के चाचाजी बहुत दूर किसी गांव में वन अधिकारी हैं। आस-पास के जंगलों की देख-भाल उनके जिम्मे है। वे उनकी इस तरह देख-रेख करते हैं कि फालतू में ही कोई उन्हें काटे या उजाड़े नहीं। साथ ही वे वहां के पशु-पक्षियों का शिकार भी नहीं होने देते।

अंकित को पेड़-पौधे, पशु-पक्षी बहुत अच्छे लगते हैं। अंकित के चाचाजी जब भी घर आते हैं, अंकित को पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों के बारे में बहुत-सी नई-नई जानकारियां देते रहते हैं। वे अंकित को नई-नई घटनाएं और कहानियां सुनाते हैं।

अंकित को कहानियां सुनने का बहुत शौक है। इसीलिए बड़ी अधीरता से वह चाचाजी के आने की प्रतीक्षा किया करता है। अंकित के लिए ये कहानियां बड़ी ज्ञानभरी होती हैं।

पिछली बार, जब चाचाजी आए थे तो एक मीठे नीम का पौधा और एक अंजीर का पौधा भी लाए थे। अब बढ़कर ये पेड़ की शक्ल धारण करने लगे हैं। मीठे नीम के पत्ते तो सारी सब्जियों को सुगंधित करते हैं। अंजीर के फल भी पकने को हैं।

इस बार चाचाजी को घर आए कई दिन हो गए। अंकित ने इसीलिए चाचाजी को एक लंबा पत्र लिखा—

आदरणीय चाचाजी! आप कितने अच्छे हैं कि आपने घर में दो पौधे लगाए। वे अब पेड़ बन गए हैं। एक पेड़ के मीठे नीम के

पत्तों से घर में सारी सब्जियां सुगंधित हो रही हैं। कभी-कभी मैं थोड़े पत्ते अपने मित्रों को भी दे देता हूं। इससे उनके घर वाले भी हम सबसे बहुत खुश हैं। अब अंजीर के फल भी पक कर बहुत सुंदर दिखने लगे हैं। अब आप कब आएंगे चाचाजी? अबकी बार मेरे लिए आप क्या ला रहे हैं?

संयोग कि चार-छ रोज बाद ही चाचाजी आ गए थे। इस बार वे मोर के हरे-सुनहरे पंख साथ में लाए थे। कई रंगीन चिड़ियों के कुछ पंख भी थे उनके पास।

अंकित खुशी के मारे फूला नहीं समा रहा था। पहले उसने उन तमाम पंखों को सहेजा-सजाया। फिर चाचाजी के पास बैठकर अंकित ने एक के बाद एक सवाल पूछने शुरू किए—'आपने अपने आदमियों से पक्षियों को मरवाया तो नहीं था ना चाचाजी? फिर पक्षियों के इतने पर कहां से आए?

चाचाजी ने अंकित के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए बताया—'मारना तो दूर, हां! हम पशु-पक्षियों को जरा भी तंग तक नहीं करते। तुम जानते हो न, पेड़-पौधे और पशु-पक्षी हमारे राष्ट्र की बहुत बड़ी संपदा हैं और शोभा भी। अनाप-शनाप तरीके से पेड़-पौधों को काटने से वायुमंडल दूषित होता है। ऑक्सीजन की कमी से मनुष्य का स्वास्थ्य खराब होता है। रेगिस्तान का विस्तार भी इसी तरह होता है, जो सबके लिए हानिकारक है। वर्षा नहीं होती और अकाल पड़ते हैं। इसी प्रकार जानवरों और पक्षियों के कारण ही तो हमारा देश इतना सुंदर लगता है। इसीलिए कहा गया है—इन्हें मारना पाप है।'

'तब इतने सारे पर....', अंकित ने अपना पहले वाला प्रश्न दोहराना चाहा कि चाचाजी आगे कहने लगे—'पक्षियों के कुछ पर अपने-आप ही इधर-उधर गिरते रहते हैं। उन्हें ही चुन-चुनकर ये पर हम अपने राजा बेटे अंकित के लिए लाए हैं।'

'ओह! चाचाजी आप कितने अच्छे हैं।' कहते-कहते अंकित चाचाजी से लिपट गया।

× × ×

अब की बार कई मास बीत गए थे। चाचाजी नहीं आए थे। अंकित उन्हें आने के लिए कई पत्र लिख चुका था। शायद उन्हें छुट्टी नहीं मिल रही थी।

फिर अचानक एक रात अंकित के घर तार आया। पिताजी ने तार पढ़ा और बताया कि चाचाजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं, स्थिति गंभीर है। सुनकर अंकित रोने लगा।

पिताजी ने उसे ढाढ़स बंधाया और कहा कि 'बहादुर बच्चे संकट में भी साहस से काम लेते हैं। सब ठीक होगा।'

गाड़ी तड़के चार बजे की थी। उन्होंने गाड़ी पकड़ी और दोपहर ढाई बजे वे केसरियाजी स्टेशन पर पहुंचे और बस द्वारा शाम को ही अंकित अपने चाचाजी के पास जा पहुंचा।

नौकर से पता चला कि चाचाजी को किसी जानवर ने काट लिया था और गहरे घाव पड़ गए थे। घावों पर पट्टियां बंधी थीं। नौकर ने बताया—'शहर के डाक्टर साहब आए थे। अभी-अभी गए हैं। अब खतरे की कोई बात नहीं, अब तो वे बात भी कर सकते हैं।'

अंकित चाचाजी के पास गया और बड़े ही धैर्य से पूछा—'चाचाजी आप कैसे हैं? आप तो जानवरों से प्यार करते हैं। फिर आपको क्यों काटा जानवरों ने?'

'बिल्कुल ठीक कहते हो अंकित बेटे!' चाचाजी ने धीरे-से करवट बदलते हुए कहा—'जब तक जानवरों को नहीं छेड़ा जाए, वे कुछ नहीं कहते हैं। पर कुछ शिकारी जानवरों का पीछा कर रहे थे और सामने हम लोग पड़ गए। अब बेचारे जानवरों को क्या समझ कि किसने उन्हें छेड़ा है। बस, अपनी जान बचाने के लिए एक भेड़िया मुझ पर झपट पड़ा। ऐसे ही किसी अवसर के लिए हम लोग बंदूक रखते हैं। मेरे एक साथी ने विवश होकर गोली भी चला दी। भेड़िया घायल होकर भाग गया। पर सुनो, शिकारियों को हमने भी पकड़ ही लिया। वे अब जेल की हवा खा रहे हैं।'

पूरी घटना सुनकर अंकित की आंखें खुशी से गीली हो गईं।

चाचाजी ने धीरे-से सिरहाने के नीचे से तस्वीरों वाली तीन-चार किताबें निकाल कर अंकित को दी—'ये तुम्हारे लिए हैं। इनमें जंगलों तथा जानवरों के स्वभाव आदि की बहुत-सारी जानकारियां हैं। इनमें देखो! साथ के कमरे में कुछ फल रखे हैं। हाथ-मुंह धोकर फल खाओ। पुस्तकें पढ़ो।' पिताजी ने कहा—'अब चाचाजी को आराम करने दो। तुम्हें अब तसल्ली हो गई है कि चाचाजी स्वस्थ हैं। अब कल सुबह हम बहुत-सी बातें करेंगे।'

चाचाजी आराम करने लगे। अंकित खुशी-खुशी पिताजी के साथ वहां से उठ खड़ा हुआ।

नौकर डाइनिंग टेबल सजा रहा था। ❖

भगवन्! जिसने विसर्जन को सब-कुछ माना वह तेरे से कुछ मांगे—यह नहीं होता। विसर्जन में आनंद है, सर्जन में दुख। मैं देता ही चलूं—प्रत्यादान की भावना भूल जाऊं—यही शांति का मार्ग है।

भगवन्! तुम्हारी स्मृति मात्र से हृदय में आनंद की लहरें उछलने लगती हैं। तुम्हारा जीवन अंतर-चेतना का प्रतीक था। पग-पग पर कला की स्फुट अभिव्यक्ति होती थी। तुमने केवल जीवन का ही पथ प्रशस्त नहीं किया, अपितु मृत्यु की अनंत शृंखला पर भी विजय पा ली। तुम्हारी कष्टसहिष्णुता को पढ़-सुनकर सारा वपु रोमांचित हो उठता है। 'देह दुक्खं महाफलम्'—के तुम साक्षात् अन्वेष्टा थे। देह का मोह बंधन का कारण है, यह तुमने माना और उसका उत्कर्ष आदर्श सामने रखा।

तुम महान थे—इसलिए नहीं कि तुमने हमें जीवन-दर्शन दिया, परंतु इसलिए कि तुम स्वयं जीवन-दर्शन बन गए। तुम आदर्श का पाठ पढ़ाते-पढ़ाते स्वयं आदर्श बन गए। कला की अभिव्यक्ति करते-करते स्वयं अभिलषणीय कला बन गए। तुम्हारी आत्मा से परमात्मा बनाने की कला की अभिव्यंजना आज भी रह-रहकर याद आ रही है।

परंतु देव! आज देश कुछ बदला-सा प्रतीत होता है। उसमें अब ऐसी नवचेतना नहीं रही। वह जीता है तो केवल एक आधार पर कि उसका अतीत समुज्ज्वल रहा है। अतीत के गीत मधुर होते हैं, परंतु उनके रटने मात्र से वर्तमान सुधरता नहीं। वर्तमान अतीत या भविष्य का ऋणी नहीं। उसका अपना अस्तित्व है। वर्तमान जब अतीत से प्रेरित होकर अनागत को पकड़ता है, तब उसमें चाकचक्य पैदा होता है—वह अपने को 'सत्यं शिवं सुंदरं' के रूप में प्रकट करता हुआ आगे बढ़ता है। तब वही अतीत और अनागत बन जाता है।

—मुनि दुलहराज

With best compliments from :

KOTHARI METALS LTD.

website : www.kotharimetal.com

SPECIALISTS IN NON FERROUS METALS

Head Office :

'Lords', 7/1 Lord Sinha Road, 5th Floor
Kolkata 700071

Phone : (033) 22828532/8534/7949 | Fax : (033) 22828462
e-mail : vikashji@cal2.vsnl.net.in

Branches at :

Delhi • Mumbai • Gurgaon • Bhiwadi (Rajasthan) • Ludhiana (Punjab)

जैन भारती, मार्च, 2005 ■ भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पं. सं. : आर जे/डब्ल्यू आर /11/48/03-05
'Licensed to Post without Pre-Payment' Under Licence No. RJ/WR/PP/Bikaner13/2004

INA
Authorised Distributor

It has been our endeavor to get you the quality products & services at better price level and the marketing arrangement we have with INA and FAG on All India basis gives the chance to further that, providing better value for your money.

FAG

Premier (India) Bearings Ltd.
Kolkata

We congratulate you for being positioned within FAG as

Star Distributor - 2004

in view of your business contracted for year 2004.

We wish you all success in accomplishing greater strides.

FAG Kugelfisher AG

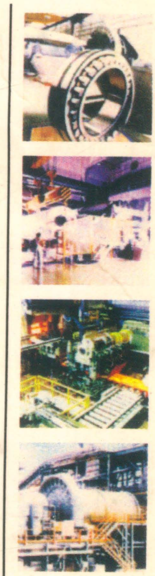

Star Distributor

- **FAG Star Distributor**
- **FAG Industrial Distributor**
- **INA Authorised Distributor**

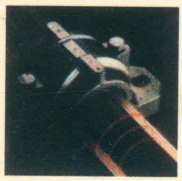
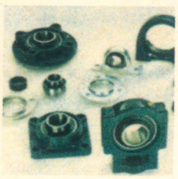
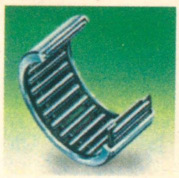

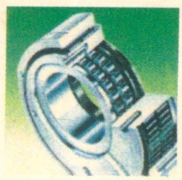

Premier (India) Bearings Ltd.

25 Strand Road, 4th Floor, Kolkata - 700 001. Phone : 22200640/22201926 Fax : 22485745 E-mail : pibl@vsnl.com

Authorisation is valid for supplies on all India basis :

Chandigarh Office :
SCO 41, 2nd Floor, Sector-20-C
Chandigarh - 160 020
Phone : 272 2287
Fax : (0172) 272 2287
E-mail : pibchd@indiatimes.com

Chennai Office :
83 (Old No. 41), Armenian Street
Chennai - 600 001
Phone : 2524 6911/6892/3727
Fax : (044) 2522 8612
E-mail : piblchennai@vsnl.com

Delhi Office :
2423/29, Surekha Building,
G. B. Road, 3rd Floor, Delhi - 6
Phone : 2321 7109,
Fax : (011) 2321 0276
E-mail : pibdel@indiatimes.com

Ludhiana Office :
BXXI 14651, Dholewal Chowk
Ludhiana - 141 003, Punjab
Phone : 2547524/525
Fax : (0161) 2547526
E-mail : rajvinder@pibldh.com

Mumbai Office :
Vashi Plaza, Ground Floor, Sector 17,
Navi Mumbai - 400 705
Phone : 2789 4595/6897
Fax : (022) 2789 6816
E-mail : pibvashi@bom8.vsnl.net.in

तरुण सेठिया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1 के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं सांखला प्रिण्टर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।